मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

RNI No.: MPBIL/2001/5256
DAVP Code : 128101
Postal Registration No. : Bhopal/MP/581/2021-2023

Publish Date : Every Month Dt. 05
Posting Date : Every Month Dt. 15
Rs. 10/-

जगत विज़न

वर्ष : 24 अंक : 03

5 नवंबर 2023

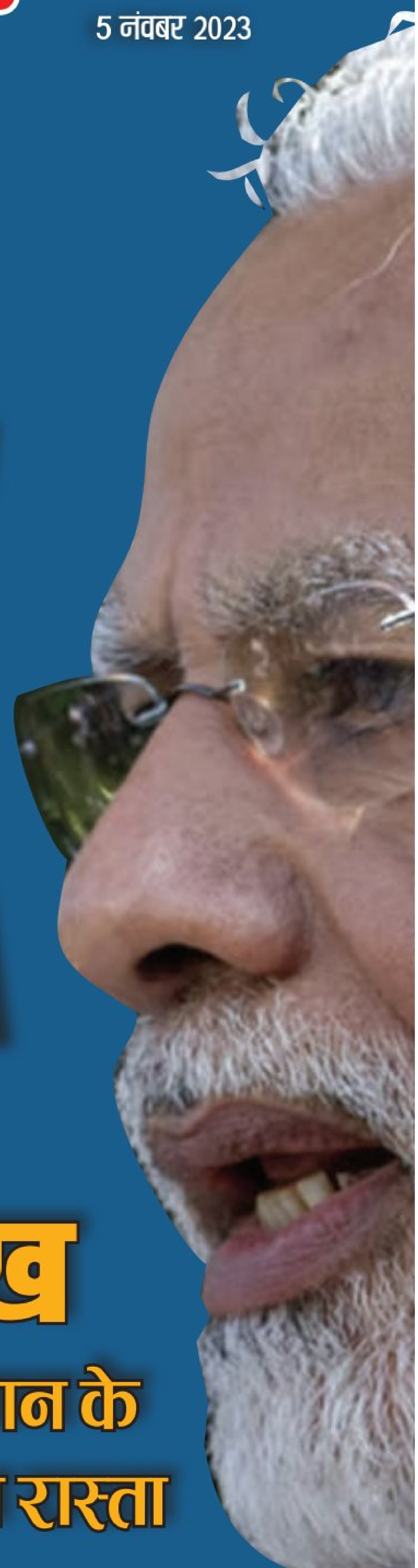

मुद्दों पर भारी पार्टियों की साख

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान के चुनावों के नतीजे तय करेंगे 2024 का रास्ता

प्रेरणा स्त्रोत : स्व. श्री जगत पाठक

निर्भीक पत्रकारिता

संपादक	विजया पाठक
कार्यकारी संपादक	समता पाठक
दिल्ली संवाददाता	नीरज दिवाकर
पश्चिम बंगाल ब्यूरो चीफ	अमित राय
विशेष संवाददाता	अर्चना शर्मा

सम्पादकीय एवं विज्ञापन कार्यालय

भोपाल

एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल

मो. 98260-64596, मो. 9893014600

फोन : 0755-4299165 म.प्र. स्वत्वाधिकारी,

छत्तीसगढ़

4-विनायका विहार, रिंग रोड, रायपुर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक,

विजया पाठक द्वारा समता ग्राफिक्स एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. द्वारा कम्पोज एवं जगत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्लाट नं. 28 सुरभि विहार बीडीए रोड भेल भोपाल से मुद्रित एवं एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. से प्रकाशित संपादक विजया पाठक। समस्त विवादों का कार्यक्षेत्र भोपाल सत्र-न्यायालय रहेगा। पत्रिका में प्रकाशित किये जाने वाले संपूर्ण आलेख एवं सामग्री की जिम्मेदारी लेखक एवं संपादक की होगी।

E-mail : jagat.vision@gmail.com

Website: www.jagatvision.co.in

मासिक द्विभाषी पत्रिका वर्ष 24 अंक 03 05 नवंबर 2023

आवरण-कथा

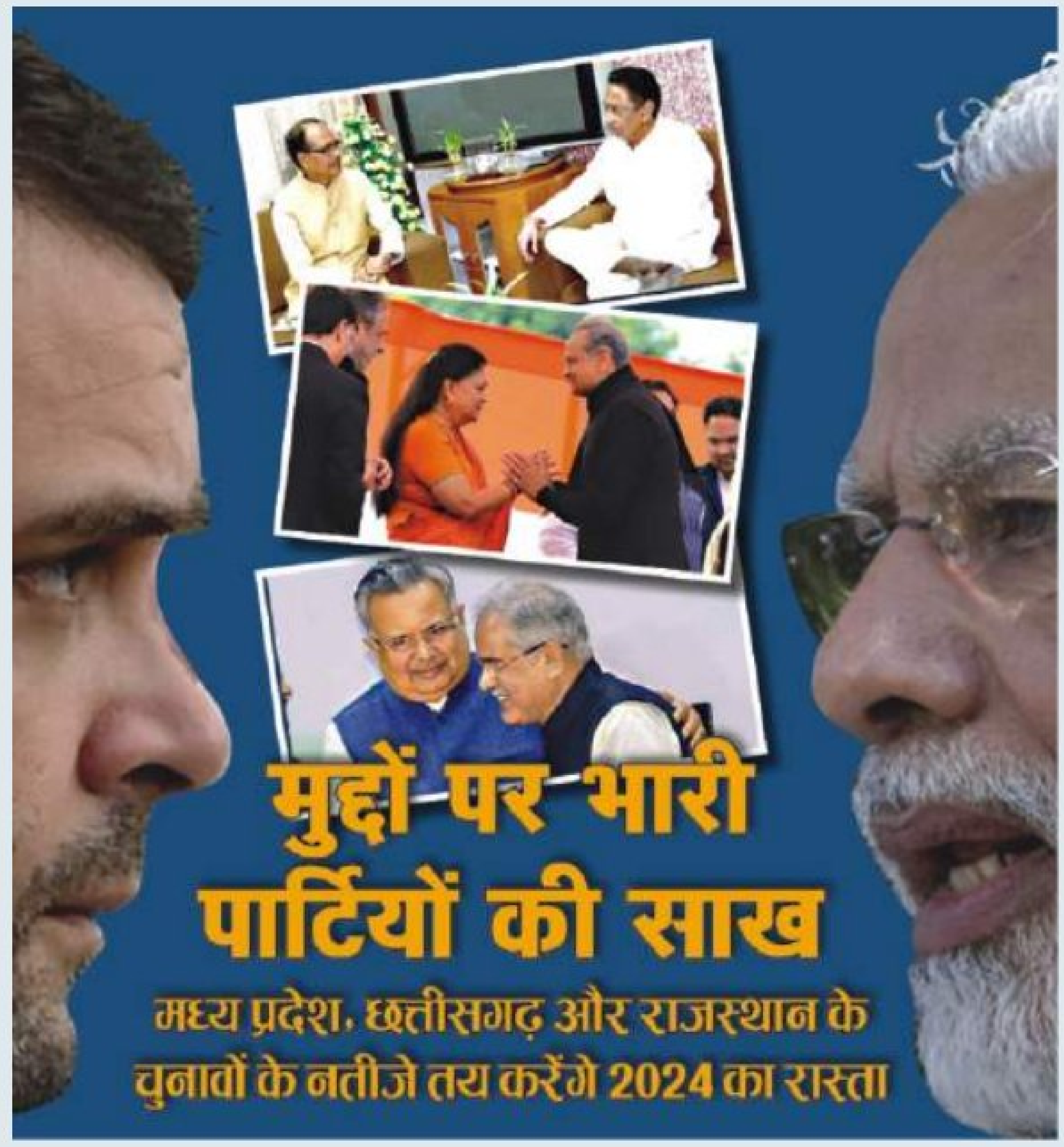

(पृष्ठ क्र.-6)

- प्रदूषण से मुक्ति के लिए गंभीरता की दरकार 42
- 2024: जातियों को लेकर उप्र में बिछने लगी सियासी बिसातें 44
- मराठा आरक्षण- युवाओं को बैसाखी थमाने का उपाय 46
- अमीरी बनाम गरीबी 49
- पंचायत से पार्लियामेंट तक के चुनाव एक साथ हो 52
- इजरायली डोम अर्थात रामायण कालीन ब्रह्म-छत्र 56
- डिजिटल सेवाओं ने आसान बना दी है जिंदगी 58
- त्योहारों के सीजन की दस्तक में प्याज के भाव आसमान छूने लगे 60
- Adivasi's of Chattisgarh Especially Gond's Protects Megalithic Tradition 62

भूपेश बघेल के लिए एक ही बात कहेंगे..
..जब नाश मनुज पर छाता है पहले विवेक मर जाता है!
छत्तीसगढ़
विजया :)

हार के डर से बौखला गए !!?
..हार मुझे बर्दाश्त नहीं।

संपादकीय

सुशासन बाबू के बिगड़े बोल

देश के राजनेताओं के बोल अपनी मर्यादाओं को भूलकर समाज को गलत दिशा में ले जाने का काम कर रहे हैं। ऐसा कोई दिन बाकी नहीं जाता है जब कोई न कोई नेता अपने बिगड़े बोल से चर्चा का विषय न बनता हो। हाल ही में बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने विधानसभा में यौन शिक्षा पर जिस तरह की अमर्यादित एवं अश्लील बातें कहीं उससे यही कहा जा सकता है कि अनपढ़ गवार से पढ़ा लिखा गंवार ज्यादा घटिया होता है। कुछ लोग उन्हें सुशासन बाबू कहते हैं। ऐसा क्यों कहते हैं, आज तक समझ में नहीं आया मगर गत दिवस उन्होंने विधानसभा में महिलाओं के संदर्भ में जिस तरह की अश्लील बातें की उसके बाद उन्हें बदजुबान बाबू कहने में किसी को भी संकोच नहीं होना चाहिए। विधानसभा में यौन शिक्षा पर बात करते हुए यह भूल गए कि वे एक मुख्यमंत्री हैं न कि किसी 'सी' ग्रेड फिल्म के डायरेक्टर। उन्होंने जो कुछ कहा वह लिखने लायक भी नहीं है। बोलते समय उन्होंने इतनी बेशर्मी ओढ़ ली कि यह भी भूल गए कि सदन में महिला विधायक भी बैठी हैं। विपक्षी दल के विधायकों ने उन्हें टोका भी और आपत्ति भी जतायी मगर बदजुबान बाबू रूके नहीं बल्कि अपने आजू-बाजू बैठे सहयोगी विधायकों की बेशर्मी पूर्ण हंसी को निरख कर खुश होते रहे। हालांकि जब सारे देश में नीतीश की किरकिरी होने लगे तो उन्होंने अपने बयान पर माफी मांगी। लेकिन सवाल उठता है कि क्या माफी मांगने से महिला समाज का जो अपमान हुआ है वह वापिस हो सकता है। निश्चित रूप से उन्होंने देश की आधी आबादी को आहत किया है। नीतिश कुमार की बातों से सदन की कई महिला विधायक इतनी आहत हुई कि वो बाहर आकर फूट-फूट कर रोने लगीं। इसके बावजूद नितीश कुमार को अपनी गलती का जरा भी आभास नहीं हुआ। जब देशभर में उनकी इस बदजुबानी पर थू-थू होने लगी तो फिर दूसरे दिन वे मांफी मांगने और अपनी निंदा करने सामने आए। मगर उनके सत्ता सहयोगी दल के नेता तेजस्वी यादव यह कहते नजर आए कि नीतीश कुमार के शब्दों का गलत अर्थ निकाला जा रहा है। अर्थात तेजस्वी यादव इतने ज्ञानी और समझदार है कि उनके आगे पूरे देश की समझ कुछ भी नहीं। वास्तव में कभी-कभी यह सोचने पर विवश होना पड़ता है कि जनता ऐसे नेताओं को किस लिहाज से चुनती है और कैसे बरदास्त कर लेती है। यूं तो नितीश कुमार को स्वार्थी छवि का नेता माना जाता है मगर इतने अधिक राजनीतिक जीवन का अनुभव होने के बाद उन्होंने जिस तरह भाषा की मर्यादा को तार-तार किया और देश की महिलाओं-बेटियों को अपमानित किया उसे निंदा करके भुलाया नहीं जा सकता।

विजया पाठक

Scanned with OKEN Scanner

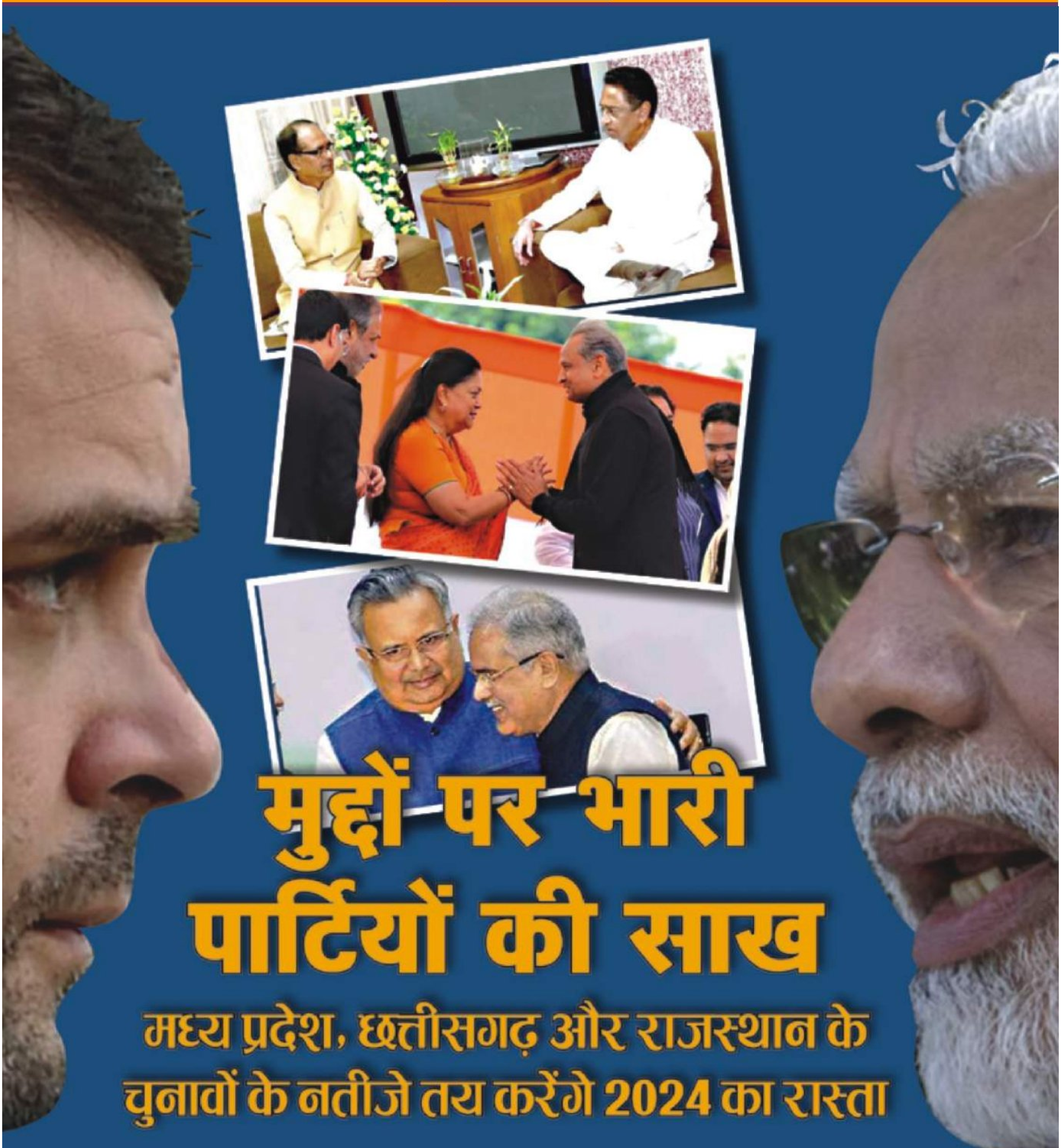

मुद्दों पर भारी पार्टियों की साख

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान के चुनावों के नतीजे तय करेंगे 2024 का रास्ता

Scanned with OKEN Scanner

देश के पांच राज्यों में विधानसभा चुनाव होने जा रहे हैं। यह चुनाव इस साल के आखिरी चुनाव हैं। साल 2024 में होने जा रहे लोकसभा चुनाव से पहले ये चुनाव काफी अहम माने जा रहे हैं। खासकर मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के विधानसभा चुनाव कई मायनों में अहम माने जा रहे हैं। छत्तीसगढ़ और राजस्थान में कांग्रेस पार्टी की सरकार है। मध्यप्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है। वहीं तेलंगाना में टीआरएस की तो मिज़ोरम में मिज़ो नेशनल फ्रंट की सरकार है। इन सभी राज्यों में चुनाव प्रचार चरम पर है। स्थानीय नेताओं से लेकर पार्टी के शीर्षस्थ नेता भी चुनाव प्रचार में कूद चुके हैं। संकेत बता रहे हैं कि यह चुनाव बहुत अहम होने वाले हैं। बीजेपी जहां पूरी ताकत के साथ सभी राज्यों में सरकार बनाने के लिए प्रयासरत दिखाई दे रही हैं वहीं कांग्रेस भी पीछे नहीं है। पार्टी के सभी शीर्षस्थ नेता पूरे दमखम के साथ मैदान में उतर चुके हैं। 2024 का सेमीफाईनल कहे जाने वाले इन चुनावों में देखना दिलचस्प होगा कि लोकसभा चुनाव की तस्वीर कैसी बनती है। यदि कांग्रेस इन चुनावों में बेहतर प्रदर्शन करती है तो निश्चित रूप से बीजेपी के लिए यह खतरे की घंटी होगी। हालांकि इन चुनावों में बीजेपी कुछ संदेहास्पद स्थिति में है। पहली बार देखने को भी मिल रहा है कि बीजेपी में बैचेनी है। आपको बता दें कि मध्यप्रदेश में विधानसभा चुनाव के लिए मतदान 17 नवंबर को, राजस्थान में 25 नवंबर को, तेलंगाना में 30 नवंबर को, मिजोरम में 07 नवंबर को और छत्तीसगढ़ में 07 नवंबर और 17 नवंबर को दो चरणों में चुनाव होगा। सभी राज्यों में मतगणना 3 दिसंबर को होगी। मिजोरम, छत्तीसगढ़, राजस्थान, तेलंगाना और मध्यप्रदेश की विधानसभा सीटों को मिलाया जाए तो कुल सीटें 679 होंगी। इस समय मिजोरम में 8.52 लाख, छत्तीसगढ़ में 2.03 करोड़, मध्यप्रदेश में 5.6 करोड़, राजस्थान में 5.2 करोड़ और तेलंगाना में 3.17 करोड़ मतदाता हैं। इन सभी को मिलाया जाए तो कुल 8.2 करोड़ पुरुष और 7.8 करोड़ महिला मतदाता हैं। राजस्थान में 2018 के विधानसभा चुनाव में, कांग्रेस और भाजपा के बीच वोट शेयर में सिर्फ 0.5 प्रतिशत का अंतर था, लेकिन कांग्रेस ने भाजपा की 73 सीटों के मुकाबले 100 सीटें जीतीं। छत्तीसगढ़ में कांग्रेस ने 90 में से 68 सीटें जीतीं। मध्यप्रदेश में भी कांग्रेस ने 114 सीटों के साथ जीत हासिल की और बीजेपी 109 पर, लेकिन बीजेपी ने 2020 में ज्योतिरादित्य सिंधिया को अपने पाले में कर कांग्रेस की सरकार गिरा दी। एक हालिया जनमत सर्वेक्षण में मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में मौजूदा सरकारों की वापसी की भविष्यवाणी की गई है, लेकिन इन राज्यों में अप्रत्याशित आश्चर्यों का इतिहास रहा है। राजस्थान में करीब 100 सीटों पर जीत का अंतर 10 फीसदी से भी कम रहा। छत्तीसगढ़ में 2013 के विधानसभा चुनाव में विजेता बीजेपी और कांग्रेस के बीच वोट शेयर का अंतर सिर्फ 0.75 फीसदी था। मध्यप्रदेश में 2018 में कांग्रेस ने बीजेपी से पांच सीटें ज्यादा जीतीं लेकिन 0.12 फीसदी कम वोटों के साथ। छत्तीसगढ़ में 2019 के लोकसभा चुनाव में भाजपा और कांग्रेस के बीच वोट का अंतर 10 प्रतिशत से कम था। भाजपा 50.70 प्रतिशत और कांग्रेस 40.91 प्रतिशत। हालाँकि, मध्यप्रदेश या राजस्थान में यह सच नहीं है, जहाँ 2019 में अंतर 25 प्रतिशत के करीब था। छत्तीसगढ़, जिसने 2000 में मध्य प्रदेश से अलग होने के बाद रमन सिंह के नेतृत्व में लगातार तीन भाजपा सरकारें देखीं, विधानसभा चुनावों में भाजपा का प्रतिशत 2013 में 41 प्रतिशत से गिरकर 2018 में 32 प्रतिशत हो गया, जिससे 2023 और भी अधिक चुनौतीपूर्ण हो गया। लगातार दो लोकसभा चुनाव में हार के बाद भले ही कांग्रेस की सांसें अटकी हुई हैं, लेकिन बीजेपी के लिए इस दौर में चुनौती बड़ी है। 2018 में तीन उत्तर भारतीय राज्यों को खोने के बाद, वह कोई कसर नहीं छोड़ रही है। भाजपा अपना दांव मोदी फैक्टर पर लगा रही है, जबकि कांग्रेस का अभियान राज्य के नेताओं, अशोक गहलोत, भूपेश बघेल और कमलनाथ पर केंद्रित है। दिलचस्प बात यह है कि जहां सभी पांच राज्यों में प्रचार का शोर बहुत ज्यादा है, वहीं मतदाता कुछ हद तक चुप हैं, जिससे यह महसूस हो रहा है कि यह चुनाव लहररहित हो सकता है और एक मूक मतदाता ने हमेशा पार्टियों की रातों की नींद हराम कर दी है। इन चुनावों के खत्म होते ही आम चुनाव की भी बिसात बिछ जाती है। मध्यप्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में होने वाले विधानसभा चुनाव को लेकर एक विश्लेषात्मक आलेख प्रस्तुत है।

Scanned with OKEN Scanner

विधानसभा चुनाव 2023

मध्यप्रदेश

कांग्रेस और बीजेपी के बीच कड़ा मुकाबला

बीजेपी पर भारी काँग्रेस

Scanned with OKEN Scanner

विजया पाठक

मध्यप्रदेश में विधानसभा चुनाव चरम पर है। आगामी 17 सितंबर को प्रदेश में वोटिंग होनी वाली है। और दिसंबर में तस्वीर स्पष्ट हो जायेगी कि प्रदेश में किसकी सरकार बनने वाली है। हालांकि वर्तमान समय में स्थिति स्पष्ट भी नहीं दिख रही है कि आखिर प्रदेश में किसका शासन होने वाला है। अभी तो दोनों प्रमुख पार्टियां अपने अपने स्तर पर ज्यादा से ज्यादा सीटें जीतने पर जोर लगा रही हैं। केन्द्रीय स्तर के नेताओं की सभाएं हो रही है और अपने पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास कर रही हैं। दोनों प्रमुख राजनीतिक दल भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस पूरी तरह चुनावी मोड में रंगे हुए हैं। दोनों ही दल एक-दूसरे पर हमलावर हैं। वर्ष 2018 का विधानसभा ऐसा चुनाव था जिसमें कांग्रेस को डेढ़ दशक बाद न केवल बढ़त मिली थी बल्कि सत्ता भी हासिल हुई थी, वहीं भाजपा डेढ़ दशक तक सत्ता में रहने के बाद बहुत कम अंतर से कांग्रेस से पीछे रह गई थी। यह बात अलग है कि महज 15 माह बाद कांग्रेस में टूट हुई और केंद्रीय मंत्री ज्योतिरादित्य सिंधिया 22 विधायकों के साथ भाजपा में शामिल हो गए, जिसके चलते भाजपा फि र सत्ता में लौट आई। पिछले चुनाव के नतीजों से भाजपा और कांग्रेस दोनों ने ही सीख ली है। यही कारण है कि वे अगले चुनाव में किसी भी तरह की चूक को दोहराने को तैयार नहीं है। साथ ही उनकी कोशिश है कि जीत का फ ासला इतना बड़ा हो कि सरकार बनाने में किसी भी तरह की बाधा न आए। भाजपा यहां सत्ता बचाए रखने के साथ बड़े अंतर से जीत को लेकर कवायद कर रही है। दरअसल, पार्टी नेतृत्व भी मान रहा है कि भाजपा के लिए मिशन 2023 आसान नहीं है। मध्य प्रदेश में भाजपा और कांग्रेस की सीटों में सबसे कम अंतर है। तमाम दल-बदल के बाद भी सदन में भाजपा के पास 127 और कांग्रेस के पास 96 विधायक हैं। 2018 के विस चुनाव में भी वोट शेयर देखें तो भाजपा को 41.6 प्रतिशत और कांग्रेस को 41.5 प्रतिशत वोट मिले थे। हालांकि 2020 में 28 सीटों पर हुए उपचुनाव में भाजपा के

दांव पर दिग्गजों की साख

वोट शेयर में खासी बढ़ोतरी देखी गई थी। लेकिन मध्यप्रदेश में सियासी नब्ज टटोलते हुए भाजपा आलाकमान की नजर सत्ता विरोधी रुझान के साथ पार्टी के सामने कई अन्य चुनौतियां पर पड़ रही है। गौरतलब है कि वर्ष 2018 में भाजपा मध्य प्रदेश में बहुमत पाने में सफ ल नहीं रही थी, लेकिन 2020 में कांग्रेस विधायकों द्वारा इस्तीफे देने के बाद मध्य प्रदेश में भाजपा की सरकार बन पाई थी। ऐसे में उपचुनाव की सीटों पर भाजपा को अपने पुराने चेहरों को घर बिठाना पड़ा था और ज्योतिरादित्य सिंधिया के साथ आए समर्थकों को मौका देना पड़ा। फिलहाल सत्ता के समीकरणों के लिए

कांग्रेस की पूरी कमान प्रदेशाध्यक्ष कमलनाथ संभाले हुए हैं। इस बार कांग्रेस पार्टी में जिस उम्मीदवार की जीतने की क्षमता ज्यादा है उसे टिकट दिया है। टिकट का चयन बड़े ही सोच समझकर किया गया है। यही कारण है कि सभी विधानसभा क्षेत्रों में इस बार कड़ा मुकाबला हो रहा है।

सिंधिया समर्थकों को तवज्जो दिया जाता रहा। विधानसभा चुनाव कांग्रेस और भाजपा दोनों ही राजनीतिक दलों के लिए एकतरफा नहीं रहने वाले हैं। वहीं दूसरी ओर कांग्रेस की पूरी कमान प्रदेशाध्यक्ष कमलनाथ संभाले हुए हैं। इस बार कांग्रेस पार्टी में जिस उम्मीदवार की जीतने की क्षमता ज्यादा है उसे टिकट दिया है। टिकट का चयन बड़े ही सोच समझकर किया गया है। यही कारण है कि सभी विधानसभा क्षेत्रों में इस बार कड़ा मुकाबला हो रहा है। मध्यप्रदेश की 230 सदस्यीय विधानसभा में

दांव पर दिग्गजों की साख

इस समय कांग्रेस के 96 विधायक हैं, जबकि सत्तारूढ़ बीजेपी के पास 126 विधायक हैं। 04 निर्दलीय विधायक हैं, जबकि दो बसपा और एक सपा का विधायक है।

इसी बीच प्रदेश में बीजेपी और कांग्रेस के नेताओं का पार्टी से मोहभंग भी हुआ और लगातार नेताओं ने पार्टी का दामन छोड़ा। कुछ माह में बीजेपी के करीब 50 नेताओं बीजेपी से नाता तोड़कर कांग्रेस में शामिल हुए तो कांग्रेस से भी कई नेताओं ने नाता तोड़कर बीजेपी का दामन थामा। एक तरफ जहां कांग्रेस पूर्व मुख्यमंत्री कमलनाथ का चेहरा आगे कर चुनाव मैदान में उतर रही है वहीं बीजेपी अभी तो केवल मोदी के नाम पर चुनाव में उतरने का मन बनाया है। क्योंकि इस चुनाव में बीजेपी हाईकमान मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान पर भरोसा नहीं कर रही है। वहीं बीजेपी के कई कददावर नेताओं द्वारा पार्टी छोड़ने से मुसीबत खड़ी हो रही है। देखा जाये तो वर्तमान में कांग्रेस की स्थिति बीजेपी की अपेक्षा बेहतर है। पूर्व सीएम कमलनाथ के नेतृत्व में पार्टी मजबूत भी हो रही है और एकजुट भी। पार्टी के सभी प्रादेशिक नेता एक स्वर में, एक संकल्प के साथ चुनावी

कांग्रेस पूर्व मुख्यमंत्री कमलनाथ का चेहरा आगे कर चुनाव मैदान में उतर रही है वहीं बीजेपी अभी तो केवल मोदी के नाम पर चुनाव में उतरने का मन बनाया है। क्योंकि इस चुनाव में बीजेपी हाईकमान मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान पर भरोसा नहीं कर रही है।

Scanned with OKEN Scanner

मैदान में हैं। किसी भी प्रकार का मनमुटाव देखने को नहीं मिल रहा है। शिवराज के घटते कद के कारण बीजेपी में बैचेनी है तो कमलनाथ की लोकप्रियता की वजह से कांग्रेस आशांवित है।

बीजेपी ने चुनाव आचार संहिता के पहले लाड़ली बहना योजना लाकर महिलाओं की साधने की कोशिश की। कर्मचारियों के लिए बड़ी-बड़ी घोषणाएं की। प्रत्येक दिन कोई न कोई पंचायत कर सभी को साधा गया। विभिन्न आयोजनों पर पैसा पानी की तरह बहाया गया। इन योजनाओं या घोषणाओं के लिए पैसा कहां से आयेगा इसकी कोई जानकारी नहीं थी। उस समय तो बस ऐसा लग रहा था कि मुख्यमंत्री शिवराज सिंह को सत्ता जाने का डर माथे पर चढ़ गया है और ऐन-केन प्रकारेण सत्ता को बचाने की जुगत पर जुगत लगा रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ बीजेपी का शीर्ष नेतृत्व भी अब शंका जता रहा है कि इस समय प्रदेश में पार्टी के प्रति माहौल उनके फे बर में नहीं है। यही कारण है कि पूरा शीर्ष नेतृत्व मध्यप्रदेश में डेरा डाले हुए है। किसी न किसी आयोजन के बहाने प्रधानमंत्री या गृहमंत्री प्रदेश में शिरकत कर रहे थे। इसके अलावा कांग्रेस की बात करें तो वह पूरी तरह से आश्वस्त है कि इस बार के चुनाव में वह पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में आने वाली है। प्रदेश में मिली हुई सत्ता जाने के बाद इस बार कांग्रेस की पूरी कोशिश है कि पूर्ण बहुमत के साथ सरकार बनाए। प्रदेश में लंबे समय से बीजेपी की सरकार है जिस कारण से पार्टी को एंटी इनकंबेंसी का डर भी सता रहा है। यह भी तय माना जा रहा है कि इस बार विधानसभा के चुनाव कशमकश भरे होने वाले हैं। बाजी किसके हाथ लगेगी इसका पूवार्नुमान किसी को नहीं है। लिहाजा सत्ताधारी दल बीजेपी किसी तरह की चूक करने को तैयार नहीं है। यही कारण है कि उसने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के चेहरे को सामने रखकर चुनाव लड़ने का लगभग मन बना लिया है। राज्य में बीजेपी

की लगभग दो दशक से सरकार है। बीच में लगभग सवा साल ऐसा आया था जब कांग्रेस के हाथ में सत्ता थी। लंबे अरसे से सत्ता की बांगडोर बीजेपी के हाथ में होने के कारण पार्टी को एंटी इनकंबेंसी की चिंता सता रही है। पिछले कुछ दिनों में पार्टी के अंदरूनी सर्वे में भी पार्टी को खुश करने जनसमर्थन से कांग्रेस का ग्राफ बढ़ा है।

कांग्रेस के सर्वे में बड़ा दावा

चुनाव से पहले कई सर्वे सामने आए हैं जिनमें प्रदेश में कांग्रेस की सरकार बनती नजर आ रही है। साथ ही बीजेपी 55 सीटों से भी कम पर सिमट रही है। पिछले 5 महीनों में विधानसभा चुनाव 2023 को काटे जाएं। इंटेलिजेंस का एक गोपनीय सर्वे लीक हुआ जिसमें बीजेपी को 80 से भी कम सीटें मिलती नज़र आ रही हैं। कांग्रेस के जीत के दावे के कई कारण है। 2018 के विधानसभा चुनाव में कमलनाथ के नेतृत्व में विधानसभा चुनाव में भाजपा को पटखनी देने वाली कांग्रेस अब पूरे जोश से मैदान में

वाले नहीं रहे। उसके बाद से पार्टी ऐसी रणनीति पर काम किया जिससे एक तरफ एंटी इनकंबेंसी के प्रभाव को रोका जा सके तो वहीं प्रधानमंत्री की छवि को आगे रख कर जनता को लुभाया जा सके। इसके अलावा कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष राहुल गांधी द्वारा की गई भारत जोड़ो यात्रा से मिले भारी लेकर 06 अलग-अलग सर्वे सामने आए हैं। सभी सर्वे में बीजेपी की सीटें लगातार घटती जा रही है। इतना ही नहीं, बीजेपी के सर्वे में भी पार्टी बुरी तरह से हार रही है। ये सर्वे आने के बाद से मध्यप्रदेश बीजेपी में खलबली मची है और ये सुझाव भी मिला है कि 60 प्रतिशत बीजेपी विधायकों के टिकट है। प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष कमलनाथ कहते हैं 2018 के चुनाव से पहले मई में प्रदेश अध्यक्ष बना था। नवंबर में चुनाव थे। मध्यप्रदेश में काफी लोग मुझे पहचानते नहीं थे मेरी कार्यशैली से वाकिफ नहीं थे परंतु आज ऐसा नहीं है। मध्य प्रदेश का हर वर्ग कमलनाथ को और कमलनाथ की

Scanned with OKEN Scanner

अन्य पार्टियां बिगाड़ सकती हैं सियासी गणित?

मध्यप्रदेश में आम आदमी पार्टी को तीसरी पार्टी के रूप में देखा जाने लगा है। आप प्रदेश में सभी 230 सीटों पर चुनाव लड़ रही है। अब सवाल उठने लगा है कि क्या आप प्रदेश में कांग्रेस और बीजेपी का सियासी गणित बिगाड़ सकती है। वैसे आप ने प्रदेश में अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी है। मप्र में पहली बार आम आदमी पार्टी का मेयर बना है। सिंगरौली में आप प्रत्याशी रानी अग्रवाल ने भाजपा के उम्मीदवार को हराया। केजरीवाल 2023 के मप्र के चुनाव में दल-बल के साथ उतर चुके हैं। अरविंद केजरीवाल ने भोपाल में आयोजित एक रैली चुनावी बिगुल फेंकते हुए घोषणा की कि पंजाब की तर्ज पर ही मप्र में अगर उनकी सरकार आई तो बिजली, स्कूल और स्वास्थ्य सुविधाओं का मुफ्त कर दिया जाएगा।

कार्यशैली को जानता और पहचानता है। राहुल गांधी की भारत जोड़ो यात्रा के दौरान और उसके बाद जिस तरह कांग्रेस को पहले हिमाचल विधानसभा चुनाव और फि र कर्नाटक विधानसभा चुनाव में जीत हासिल हुई उससे कांग्रेस कार्यकर्ताओं को मनोबल बढ़ा हुआ है। भारत जोड़ो यात्रा कांग्रेस कार्यकर्ताओं के लिए एक उत्प्रेरक का काम कर रही है जिससे कांग्रेस संगठन मज़बूत हुआ। राहुल गांधी की भारत जोड़ो यात्रा का दूरगामी असर हुआ है। राहुल गांधी ने जो नई कांग्रेस बनाई है, वह राहुल कांग्रेस है। राहुल गांधी की मर्जी से ही मल्लिकार्जुन खड़गे राष्ट्रीय अध्यक्ष बने और कर्नाटक चुनाव में दोनों के बीच तालमेल दिखाई दिया। कर्नाटक और हिमाचल की जीत से कांग्रेस पार्टी एक पुर्नजीवन प्राप्त कर चुकी है। कांग्रेस विधानसभा चुनाव में मध्यप्रदेश की जनता को प्रभावित करने वाले मुद्दों को उठाते हुए दिख रही है। चाहे वह भ्रष्टाचार का मामला हो या कर्मचारियों की मांगों का कांग्रेस इनको प्रमुखता उठा रही है। मध्यप्रदेश में कांग्रेस कर्नाटक की तर्ज पर स्थानीय मुद्दों को उठाने की रणनीति पर चल रही है। वहीं भाजपा के पास मजबूरी है कि उसके पास स्थानीय मुद्दों में उठाने के लिए कुछ होता नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

कमलनाथ बनाम शिवराज पर केन्द्रित चुनाव

मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव कई मायनों में खास होने वाल है। क्योंकि इस बार न बीजेपी के पास और न ही कांग्रेस के पास कोई ऐसा मुददा है जिसे लेकर वह मतदाताओं के बीच जा सके। केवल घोषणाओं और गारंटी के बल पर दोनों पार्टियां चुनाव मैदान में हैं। मध्यप्रदेश में इससे पहले वाले चुनावों को देखें तो हर बार कोई बड़ा या प्रभावी मुददा रहा है जिसके बलबूते वह मैदान में कूंदी। लेकिन इस बार कोई लहर या मुद्दा दिखाई नहीं दे रहा है। 2003 के चुनाव में सड़क, पानी, बिजली और दलित एजेंडा जैसे मुद्दों पर जनता ने तत्कालीन कांग्रेस सरकार को उखाड़ फें का था। 2008 के चुनाव में कांग्रेस गुटबाजी के चलते हारी। 2013 में कांग्रेस नेतृत्व वाली केंद्र की तत्कालीन यूपीए सरकार के सत्ता विरोधी रुझान और देश में मोदी लहर के चलते कांग्रेस को प्रदेश की सत्ता से बाहर रहना पड़ा। 2018 में तस्वीर बदली और भाजपा को सत्ता विरोधी रुझान व कांग्रेस के किसान कर्जमाफी के नारे ने चुनाव हरा दिया। 2023 के विधानसभा चुनाव की तस्वीर पिछले चार चुनावों से अलग रहने की संभावना है। इस बार कोई लहर या बिजली, सड़क, पानी जैसे मुद्दे नहीं हैं, जो चुनावी तस्वीर बन रही है उसमें कमलनाथ के 15 महीने बनाम शिवराज के 18 साल पर ही मतदाताओं की मुहर लगेगी। 2003 में जिन मुद्दों पर कांग्रेस को हार का सामना करना पड़ा, सरकार बदलने वाले वे सारे मुद्दे खत्म हो गए हैं। वहीं इतिहास की बात करें तो बीजेपी के लिए 2008 का चुनाव बेहद चुनौतीपूर्ण था। शिवराज सिंह चौहान की लोकप्रियता दांव पर थी, उमा भारती की भारतीय जनशक्ति पार्टी भी मैदान में थी। कांग्रेस की हार का कारण गुटबाजी बनी। 2013 के चुनाव में कांग्रेस को अपनी ही यूपीए गठबंधन की केंद्र सरकार की एंटी इनकंबेंसी का प्रदेश में सामना करना पड़ा।

कमलनाथ के 15 महीने बनाम शिवराज के 18 साल पर ही मतदाताओं की मुहर लगेगी। 2003 में जिन मुद्दों पर कांग्रेस को हार का सामना करना पड़ा, सरकार बदलने वाले वे सारे मुद्दे खत्म हो गए हैं। वहीं इतिहास की बात करें तो बीजेपी के लिए 2008 का चुनाव बेहद चुनौतीपूर्ण था। शिवराज सिंह चौहान की लोकप्रियता दांव पर थी, उमा भारती की भारतीय जनशक्ति पार्टी भी मैदान में थी। कांग्रेस की हार का कारण गुटबाजी बनी।

Scanned with OKEN Scanner

देश में मोदी लहर थी। 2018 में आरक्षण और एससी-एसटी एक्ट का मुद्दा हावी रहा। पदोन्नति में आरक्षण और एससी-एसटी एट्रोसिटी एक्ट का मुद्दा गरमाया हुआ था। जो संकेत मिले हैं, या जो ट्रेंड दिखे हैं, उससे साफ है कि दोनों ही पार्टियों के लिए 2023 का संघर्ष कड़ा रहने वाला है।

राजनीति का केंद्र बना आदिवासी समाज

मध्यप्रदेश की सियासत में इन दिनों समाज का सबसे पिछड़ा तबका यानी आदिवासी राजनीतिक दलों की जुबान पर है। प्रदेश की करीब 02 करोड़ से ज्यादा आदिवासी आबादी को लुभाने के लिए सत्ताधारी भाजपा और विपक्षी दल कांग्रेस के नेता जोर लगा रहे हैं। पिछले चुनाव में आदिवासी क्षेत्रों में कांग्रेस को बढ़त मिली, तो 15 साल बाद बीजेपी को सत्ता से दूर होना पड़ा। पिछले चुनाव में हुई चूक को भाजपा दोहराना नहीं चाहती। मप्र के 20 जिलों के 89 ब्लॉक आदिवासी बहुल हैं। इनमें सबसे ज्यादा इंदौर संभाग के 40 विकासखंड आदिवासी बहुल हैं। इसी वजह से लगातार हो रहे इन राजनीतिक कार्यक्रमों का केंद्र इंदौर ही है। दूसरे नंबर पर जबलपुर संभाग के 27 ब्लॉक जनजातीय बहुल हैं। अगले साल होने वाले विधानसभा चुनाव के नजरिए से देखें तो साल भर तक आदिवासी राजनीति का सबसे बड़ा केंद्र इंदौर ही रहा। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी भी इसी आदिवासी बाहुल्य इलाके में अपनी भारत जोड़ो यात्रा निकाल चुके हैं। मध्यप्रदेश के 20 जिलों में कुल 89 विकासखंड आदिवासी क्षेत्रों में हैं। प्रदेश की लगभग 84 सीटों पर आदिवासी वोटर ही तय करते हैं कि कौन सी पार्टी जीतेगी। मध्यप्रदेश में कांग्रेस सांसद राहुल गांधी की भारत जोड़ो यात्रा का रूट भी आदिवासी बहुल इलाकों का रखा गया।

मध्यप्रदेश की सियासत में इन दिनों समाज का सबसे पिछड़ा तबका यानी आदिवासी राजनीतिक दलों की जुबान पर है। प्रदेश की करीब 02 करोड़ से ज्यादा आदिवासी आबादी को लुभाने के लिए सत्ताधारी भाजपा और विपक्षी दल कांग्रेस के नेता जोर लगा रहे हैं। पिछले चुनाव में आदिवासी क्षेत्रों में कांग्रेस को बढ़त मिली, तो 15 साल बाद बीजेपी को सत्ता से दूर होना पड़ा। पिछले चुनाव में हुई चूक को भाजपा दोहराना नहीं चाहती।

50 प्रतिशत से ज्यादा आदिवासी आबादी वाले सबसे ज्यादा गांव मध्यप्रदेश में

केंद्र सरकार की एक रिपोर्ट बताती है कि देश में 50 प्रतिशत या इससे ज्यादा जनजातीय आबादी वाले कुल 36,428

गांव हैं। आधी से ज्यादा आदिवासी आबादी वाले गांवों में मप्र देश में पहले नंबर पर है। एमपी के 7307 गांवों में आदिवासियों की आबादी 50 प्रतिशत से ज्यादा है। दूसरे नंबर पर राजस्थान में 4302 गांवों में 50 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की है। इसके बाद छत्तीसगढ़ में 4029, झारखंड में 3891, गुजरात में 3764, महाराष्ट्र में 3605 गांवों में आधे से ज्यादा आदिवासी रहते हैं। मप्र विधानसभा में कुल 230 सीटें हैं इनमें से 47 आदिवासी वर्ग के लिए आरक्षित हैं। साथ ही आदिवासियों की बड़ी आबादी होने से प्रदेश की 84 सीटों पर आदिवासी वोटर्स निर्णायक हैं। प्रदेश में 2013 के विधानसभा चुनाव में आदिवासी वर्ग के लिए आरक्षित इन 47 सीटों में से भाजपा ने 31 सीटें जीती थीं। कांग्रेस के खाते में सिर्फ 15 सीटें आई थीं, लेकिन 2018 के चुनाव में भाजपा को इसी ट्राइबल बेल्ट से करारी हार मिली और वो सिर्फ 16 पर ही जीत दर्ज कर सकी। कांग्रेस ने 30 सीटें जीती थीं और भाजपा सत्ता से बाहर हो गई थी। 2018 के विधानसभा चुनाव में इन्हीं आदिवासी वोटों के कारण ही 15 साल बाद कांग्रेस की सत्ता में वापसी हुई थी।

बीजेपी इस बार पूरी तरह से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के भरोसे चुनाव जीतना चाहती है। यही कारण है कि प्रदेश में मोदी की दर्जनों सभाएं आयोजित की जा रही है। मोदी के चेहरे पर बीजेपी सत्ता में आना चाहती है।

भाजपा के लिए बड़ी चुनौती बना ग्वालियर-चम्बल

ग्वालियर चंबल अंचल में अपने गढ़ फतेह करना भाजपा के लिए नाक का सवाल बन गया है। कौन किस पर भारी पड़ेगा। कौन किसका किले ढहाएगा। यह 2023 के चुनावी रण में देखने को भी मिलेगा। मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव को लेकर भाजपा का फोकस उन इलाकों में है जहां 2018 में पार्टी को हार का सामना करना पड़ा था। केन्द्रीय गृहमंत्री अमित शाह लगातार राज्य का दौरा कर रहे हैं। सूत्रों का कहना है कि मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव की कमान खुद अमित शाह ने उठा ली है। अमित शाह ने भाजपा नेता और कार्यकर्ताओं तक लोगों तक पहुंचने को कहा है। पार्टी ने हाल ही में अपना सर्वे

Scanned with OKEN Scanner

कराया था। इस सर्वे को लेकर भाजपा की मुश्किलें बढ़ गई हैं। सूत्रों का कहना है कि भाजपा के सर्वे में तीन इलाकों का फीडबैक निगेटिव मिला है। अब इन इलाकों को साधने के लिए अमिट प्लान बनाया है। भाजपा के सर्वे रिपोर्ट में ग्वालियर-चंबल को लेकर निगेटिव रिपोर्ट आई है। 2018 के विधानसभा चुनाव में यहां भाजपा को बड़ा झटका लगा था। इस इलाके में विधानसभा की 34 सीटें आती हैं। लेकिन 2018 में भाजपा केवल 07 सीट ही जीत पाई थी। हालांकि 2020 में सिंधिया के भाजपा में शामिल होने के बाद यहां का समीकरण बदल गया था। उपचुनाव में भाजपा ने अच्छा प्रदर्शन किया था। अब ग्वालियर-चंबल को साधने के लिए भाजपा ने नरेन्द्र सिंह तोमर को चुनाव प्रबंधन समिति का संयोजक बनाया है। वहीं, सिंधिया केन्द्रीय मंत्री और प्रदेश अध्यक्ष वीडी शर्मा भी इसी इलाके में आते हैं। इन नेताओं को जिम्मेदारी देकर पार्टी कार्यकर्ताओं की नाराजगी दूर करने की कोशिश में है। विधानसभा चुनाव में ग्वालियर-चंबल की जंग बेहद रोचक मानी जा रही है। क्योंकि भाजपा और कांग्रेस के बड़े क्षत्रप इसी अंचल से आते हैं। खास बात यह है कि 2020 में हुए दलबदल में सबसे ज्यादा इसी अंचल के विधायकों ने पाला बदला था। यहां भाजपा जितनी मजबूत है कांग्रेस भी उतनी ही दमदार है। लेकिन अंचल की पांच विधानसभा सीटें ऐसी हैं जो कांग्रेस के गढ़ में तब्दील हो चुकी हैं। जिन्हें भेदना भाजपा के लिए किसी चुनौती से कम नहीं है। बताया जाता है कि ग्वालियर-चंबल अंचल में कांग्रेस के 05 ऐसे अभेद गढ़ हैं जिनको फ तेह करना भाजपा के लिए सपना बना हुआ है। 1990 से लेकर 2018 तक इन सियासी किलों पर भाजपा को शिकस्त मिली है, खुद एक बार शिवराज सिंह चौहान को यहां हार का सामना कर पड़ा है, यही वजह है कि इन किलों पर चढ़ाई करने के

पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह इस बार के चुनाव में चाणक्य की भूमिका में नज़र आ रहे है। चुनाव प्रबंधन में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। कमलनाथ के चेहरे पर भले ही चुनाव लड़ा जा रहा हो लेकिन पर्दे के पीछे दिग्विजय सिंह अपना रोल बेहतर निभा रहे हैं।

इस चुनाव में केन्द्रीय मंत्री ज्योतिरादित्य सिंधिया की साख भी दांव पर लगी है। खासकर ग्वालियर चंबल क्षेत्र क्षेत्र में बीजेपी का प्रदर्शन उनका भविष्य तय करेगा। सिंधिया का आगे का रास्ता यही से निकलेगा।

Scanned with OKEN Scanner

जहां तक बात कमलनाथ की जाए तो सिर्फ चंबल ग्वालियर क्षेत्र में ही नही समूचे मध्यप्रदेश में कमलनाथ के लिए यह चुनाव कमलनाथ के लिए साख का साल है। हालांकि रूझान कांग्रेस के पक्ष में दिखाई दे रहा है। प्रदेश के लगभग क्षेत्रों में कांग्रेस बेहतर स्थिति में दिखाई दे रही है। कमलनाथ के बेहतर प्रबंधन और तालमेल से कांग्रेस अब सत्ता के करीब दिखा रही है।

लिए इस बार भाजपा के अमित शाह खुद सियासी बिछात बिछाएंगे, क्योंकि इन गढ़ों पर जीत के सहारे ही भाजपा 2023 में कामयाबी का रास्ता बनाएगी। भाजपा के लिए ग्वालियर चंबल के इन 05 मजबूत सियासी गढ़ फतेह करना सबसे बड़ी चुनौती है। शिवराज विधानसभा चुनाव में इन अभेद किलों में से एक किले राघौगढ़ पर शिकस्त झेल चुके हैं, ऐसे में इन किलों को भेदना भाजपा के लिए कहीं मुश्किल तो कही नामुकिन बना हुआ है। यही वजह है कि भाजपा अपने दिग्गजों को यहां मोर्चे पर तैनात करेगी। जिनमें ज्योतिरादित्य सिंधिया से लेकर नरोत्तम मिश्रा तक मोर्चा संभालेंगे। इसके अलावा केंद्रीय नेतृत्व भी यहां एक्टिव होगा। राघौगढ़ का किला जीतना आज भी भाजपा के लिए सपना बना हुआ है। राघौगढ़ सीट दिग्विजय सिंह के परिवार की सीट मानी जाती है। यह कांग्रेस का ऐसा अभेद गढ़ है। जहां मुख्यमंत्री शिवराज को भी हार का सामना करना पड़ा था। 1990 से यहां कांग्रेस लगातार जीतती आ रही है। 1990 और 1993 में दिग्विजय सिंह के भाई लक्ष्मण सिंह यहां से विधायक चुने गए। वहीं 1998 और 2003 दिग्विजय सिंह जीते। 2008 में कांग्रेस के दादाभाई मूल सिंह जीते। 2013 के विधानसभा चुनाव में दिग्विजय सिंह ने इस सीट पर अपनी विरासत बेटे जयवर्धन सिंह को सौंप दी। जिसके बाद 2013 और 2018 में जयवर्धन सिंह यहां से जीते। भिंड जिले की लहार विधानसभा सीट ग्वालियर-चंबल में कांग्रेस का सबसे मजबूत गढ़ मानी जाती है। लहार विधानसभा कांग्रेस का वो किला है, जिसे भाजपा बीते 33 सालों से भेद नहीं पाई है, इस सीट पर कांग्रेस के कद्दावर नेता डॉ.गोविंद सिंह अंगद के पैर की तरह जमे हुए हैं। गोविंद सिंह ने लहार सीट पर सन

Scanned with OKEN Scanner

1990 से 2018 तक के सभी 07 विधानसभा चुनाव लगातार जीते हैं। वर्तमान में वह नेता प्रतिपक्ष की जिम्मेदारी भी संभाल रहे हैं। शिवपुरी जिले की पिछोर विधानसभा सीट कांग्रेस भी कांग्रेस का अस्तित्व में आने के बाद से भाजपा के लिए इसे जीतना सपना बना हुआ है। इस सीट पर कांग्रेस के लाखन सिंह यादव जमे हुए हैं। बीते एक दशक में शिवराज लहर और शिवराज मोदी लहर के बावजूद यहां पर विधानसभा सीट पर पिछले डेढ़ दशक से कांग्रेस का कब्जा है। 2008, 2013 और 2018 के तीन विधानसभा चुनाव में कांग्रेस की इमरती देवी जीत दर्ज कर कब्जा जमाया है। 2020 के उपचुनाव में भी डाबरा सीट

वहीं बात मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान कि की जाए तो इस बार के विधानसभा चुनाव में उनका कद कुछ कम हुआ है। हालांकि वे लगातार प्रतिदिन 10-12 सभाएं कर रहे है लेकिन पार्टी हाईकमान उन पर कम भरोसा कर रहा है। साथ ही प्रदेश की जनता भी उनसे प्रभावित नही हो रही है।

अभेद किला बनी हुई है। इस सीट पर कांग्रेस के केपी सिंह बीते 30 सालों से अंगद के पैर की तरह जमे हुए हैं। आंकड़ों पर गौर करें तो पिछले 06 चुनाव में केपी सिंह ने लगातार यहां से जीत दर्ज करते हुए आ रहे हैं। 2008 में भितरवार सीट के भाजपा भितरवार में कांग्रेस के लाखन सिंह यादव को शिकस्त नहीं दे पाई है, 2013 और 2018 में इस सीट पर कद्दावर नेता अनूप मिश्रा शिकस्त झेल चुके हैं। 2008 से लाखन सिंह यादव ने लगातार तीनों चुनाव जीते हैं। ग्वालियर जिले की डबरा कांग्रेस के खाते में गई। कांग्रेस के सुरेश राजे ने भाजपा के टिकट पर उतरी इमरती देवी को हराया। इन किलों के मजबूत इतिहास को समझने के बाद इन सीटों पर इस बार भाजपा चाणक्य कहे जाने वाले अमित शाह की नजर है। भाजपा के आला

Scanned with OKEN Scanner

नेताओं ने मंथन किया है, जिसमें तय हुआ है कि बूथ लेवल पर इन सीटों पर पार्टी को मजबूत किया जाना है। कांग्रेस का दावा है कि इन गढ़ों पर कब्जा तो बरकरार रहेगा। साथ ही अब कांग्रेस भाजपा के गढ़ों को भी जीतेगी। कांग्रेसियों का दावा है कि माहौल भाजपा सरकार के खिलाफ है, लिहाजा कांग्रेस को ऐतिहासिक सफ लता मिलेगी। इस बार ग्वालियर चंबल अंचल में अपने गढ़ बरकरार रखना कांग्रेस के लिए बड़ी चुनौती होगा। तो वहीं इन गढ़ों को फ तेह करना भाजपा के लिए नाक का सवाल बन गया है।

बीजेपी की जन आशीर्वाद यात्रा भी नहीं बना पायी माहौल

मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव को लेकर बीजेपी ने जन आशीर्वाद यात्रा निकाली। इस यात्रा में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान को अलग रखा गया। मतलब उनको सामने न रखते हुए शीर्ष नेतृत्व को आगे किया गया। कहा जा सकता है कि सत्ता में बने रहने के लिए बीजेपी एक बार फि र जन आशीर्वाद यात्रा के भरोसे है। यात्रा का ये फ ार्मूला पुराना है, लेकिन भाजपा ने इसमें रणनीति नई लगाई है। इससे पहले 2013 और 2018 के चुनाव में जन आशीर्वाद यात्रा निकाली जा चुकी है, लेकिन इस बार पहले वाली यात्राओं से बिल्कुल अलग यात्रा थी। उस समय मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान बीजेपी का चेहरा थे। उन्होंने इस यात्रा की 95 दिन अगुवाई की थी। इस बार एक नहीं, पांच यात्राएं निकली, जो 17 से 21 दिन में प्रदेश की 230 में से 211 विधानसभा सीटों को कवर किया। पिछली तीन जन आशीर्वाद यात्राओं में चेहरा रहे मुख्यमंत्री शिवराज को इस बार कमान क्यों नहीं सौंपी? यह ऐसे सवाल हैं जिनका जवाब आने वाले विधानसभा चुनाव में देखने को मिलेगा।

कांग्रेस की जन आक्रोश यात्रा

बीजेपी के तरह कांग्रेस ने भी प्रदेश में जन आक्रोश यात्रा निकाली। प्रदेश भर में 07 यात्राएं निकाली जो 15 दिन में 11 हजार 400 किलोमीटर की दूरी तय की। इस यात्रा का नेतृत्व अलग अलग स्थानों पर वरिष्ठ नेताओं ने किया। यह यात्रा प्रदेश की सभी 230 विधानसभा क्षेत्रों में पहुंची। यात्रा के दौरान कांग्रेस के 11 वचनों को प्रचारित किया गया। प्रदेश के सात अलग-अलग स्थानों से यात्रा निकाली गई। चुनाव अभियान के अंतर्गत कांग्रेस ने जनता के बीच अपनी बात पहुंचाने के लिए जन आक्रोश यात्रा निकालने का निर्णय लिया गया था। चुनाव से पहले जन आक्रोश यात्रा कांग्रेस का बड़ा अभियान था। दरअसल, इन नेताओं को जब पार्टी की सदस्यता दिलाई गई थी, तब यह दावा किया गया था कि इनके आने से न केवल भाजपा को बड़ा झटका लगेगा बल्कि कांग्रेस स्थानीय स्तर पर मजबूत होगी।

मप्र में 170 सीटों पर किसानों का असर

प्रदेश की 80 फ ीसदी आबादी ग्रामीण इलाकों से आती है। प्रदेश की राजनीति में किसानों का वर्चस्व है। कृषि प्रधान राज्य होने के नाते यहां की राजनीति भी कृषि के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। चुनावों के समय भी किसानों को लेकर तरह-तरह के लोकलुभावन वादे किये जाते हैं। बताया जाता है कि 2018 का विधानसभा चुनाव कांग्रेस ने किसानों का कर्जा माफ किये जाने के वादे के कारण जीता था। वहीं बीजेपी भी किसानों को लुभाने में कोई कसर नहीं छोड़ती है। मप्र में 230 विधानसभा सीटों में से 170 सीटें ऐसी हैं, जहां किसान वोट निर्णायक भूमिका में हैं। मतलब साफ है विधानसभा चुनाव से पहले जो दल किसानों का भरोसा जीतने में सफल होगा सत्ता की चाबी उसी पार्टी के हाथ में होगी।

Scanned with OKEN Scanner

विधानसभा चुनाव 2023

छत्तीसगढ़

कांग्रेस को भारी पड़ रहे भूपेश बघेल के काले कारनामें

छत्तीसगढ़ विधानसभा में कुल 90 सीटें हैं। साल 2018 में हुए विधानसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी ने ज़बरदस्त जीत हासिल की थी। कांग्रेस ने 43.04 प्रतिशत वोटों के साथ 68 सीटों पर जीत हासिल की थी। बीजेपी के हिस्से सिर्फ 15 सीटें आईं थीं। बीजेपी को 32.92 प्रतिशत वोट मिले थे। राज्य में दो सीटें बहुजन समाज पार्टी ने हासिल की थी। उसे 3.87 प्रतिशत वोट मिले थे। 2023 के विधानसभा चुनाव में बीजेपी-कांग्रेस के बीच कांटे की टक्कर है। हालांकि आप ने भी 57 सीटों पर उम्मीदवार उतारकर मुकाबले को रोचक बना दिया है। कांग्रेस ने इस बार 75 प्लस का लक्ष्य रखा है। वहीं, बीजेपी भी सत्ता में वापसी का दावा कर रही है। इसी बीच एक चुनाव सर्वे सामने आया है जिसने बीजेपी-कांग्रेस दोनों को मुश्किल में डाल दिया है। सर्वे रिपोर्ट के अनुसार, छत्तीसगढ़ विधानसभा चुनाव में बीजेपी को इस बार 45 से 50 सीटों पर जीत का अनुमान लगाया गया है। वहीं, कांग्रेस को 30 से 40 सीटें मिलती दिख रही हैं। अन्य के खाते में 02 से 06 सीटें जीतने का अनुमान है। गौरतलब है कि छत्तीसगढ़ के दोनों प्रमुख दलों कांग्रेस और भाजपा के टिकट वितरण में गुटबाजी का असर साफ तौर पर देखने को मिलता है। गुटबाजी

सर्वे रिपोर्ट के अनुसार, छत्तीसगढ़ विधानसभा चुनाव में बीजेपी को इस बार 45 से 50 सीटों पर जीत का अनुमान लगाया गया है। वहीं, कांग्रेस को 30 से 40 सीटें मिलती दिख रही हैं। अन्य के खाते में 02 से 06 सीटें जीतने का अनुमान है।

के डर से ही भाजपा चुनाव के अंत समय तक भी मुख्यमंत्री का चेहरा घोषित नहीं कर सकी है। रमन सिंह पंद्रह साल तक मुख्यमंत्री रहे लेकिन छत्तीसगढ़ बनने के बाद पहली बार है जब पूर्व मुख्यमंत्री रमन सिंह प्रदेश में मुख्यमंत्री का चेहरा नहीं हैं। भाजपा हिमाचल और कर्नाटक की तर्ज पर ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के चेहरे पर चुनाव लड़ रही है। वहीं कांग्रेस ने भी अपने पत्ते नहीं खोले हैं कि कांग्रेस जीती तो सीएम कौन होगा। खैर, किसानों की कर्ज माफी और धान की एमएसपी से अधिक दर पर खरीद के वादे ने कांग्रेस को पूर्ण बहुमत में ला दिया। पिछले पांच सालों में भूपेश बघेल के नेतृत्व वाली छत्तीसगढ़ सरकार की नीतियों और योजनाओं के केंद्र में किसान रहे हैं। वह चाहे राजीव गांधी किसान न्याय योजना हो या गोधन न्याय योजना हो या राजीव गांधी ग्रामीण भूमिहीन कृषि मजदूर न्याय योजना हो इन योजनाओं का मैदानी क्षेत्रों में सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा।

Scanned with OKEN Scanner

महादेव सट्टा ऐप मामले में भूपेश बघेल का नाम आने से बैकफुट पर आ गई कांग्रेस

छत्तीसगढ़ विधानसभा चुनाव के चंद दिन पहले प्रदेश के मुख्यमंत्री भूपेश बघेल महादेव आनलाईन सट्टा ऐप मामले में बुरे फं सते नजर आ रहे हैं। इस मामले की जांच कर रही ईडी का दावा है कि मुख्यमंत्री भूपेश बघेल को 508 करोड़ रुपये दिये गये हैं। दुबई से आये असीम दास से ईडी की पूछताछ में यह बात कबूली है। प्रवर्तन निदेशालय ने दावा किया कि उसने एक कैश कूरियर का बयान दर्ज किया है, जिसने आरोप लगाया है कि महादेव सट्टेबाजी ऐप के प्रमोटरों ने अब तक छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री भूपेश बघेल को 508 करोड़ रुपए का भुगतान किया है। महादेव सट्टा ऐप मामले में भूपेश बघेल का नाम आने से कांग्रेस बैकफु ट पर आ गई है। असीम दास की बघेल को पैसे देने की बात कबूल करना बहुत बड़ी बात है। निश्चित तौर पर इस पैसे

दांव पर दिग्गजों की साख

का उपयोग चुनाव में होना था। महादेव आनलाईन सट्टा ऐप में मुख्यमंत्री की संलिप्तिता जाहिर करती है कि इस ऐप को फलने फूलने में भूपेश बघेल की बड़ी भूमिका रही है। हालांकि पहले से ही शंका जाहिर की जा रही थी कि इस ऐप के प्रमोटर्स को प्रदेश की सरकार का पूरा सहयोग मिल रहा है। एजेंसी को इस मामले में छत्तीसगढ़ सरकार के कुछ सरकारी अधिकारियों की भूमिका का शक है। ईडी के मुताबिक ये पैसे चुनावों के लिये महादेव एप के प्रोमोटर की तरफ से दुबई से कुरियर के जरिये कार

महादेव ऐप को फलने फूलने में भूपेश बघेल की बड़ी भूमिका रही है। हालांकि पहले से ही शंका जाहिर की जा रही थी कि इस ऐप के प्रमोटर्स को प्रदेश की सरकार का पूरा सहयोग मिल रहा है। एजेंसी को इस मामले में छत्तीसगढ़ सरकार के कुछ सरकारी अधिकारियों की भूमिका का शक है।

में भेजे जा रहे थे। ईडी को आशंका है कि उसके घर से मिला पैसा ऑनलाइन सट्टा ऐप का है, जिसे चुनाव में खर्च करने के लिए रखा गया था। कहा जा सकता है कि इस ऐप को फलने-फूलने में छत्तीसगढ़ का बहुत बड़ा रोल है। ईडी को अब तक मिली कामयाबी से यही लगता है कि प्रदेश की सरकार और शासन प्रशासन से काफी मदद भी मिली है। क्योंकि इस ऐप को लेकर प्रदेश के कई प्रशासनिक अधिकारी या तो जेल में हैं या ईडी की रडार पर हैं। अब नया नाम मुख्यमंत्री तक का जुड़ गया है।

दांव पर दिग्गजों की साख

भूपेश बघेल के विस क्षेत्र से ही फला-फूला महादेव ऐप

अब तक मिले सबूतों और गिरफ्तारियों से पता चला है कि इस पूरे महादेव आनलाईन सट्टा ऐप के तार मुख्यमंत्री भूपेश बघेल के विधानसभा क्षेत्र भिलाई दुर्ग पाटन से जुड़े हैं। इस क्षेत्र से ही ज्यादातर गिरफ्तारियां हुई हैं। और यह सट्टा वर्षों से चल रहा है। लेकिन यह बात समझ से परे लग रही है कि मुख्यिमंत्री के क्षेत्र में सट्टा ऐप चल रहा था और सरकार को पता तक नहीं था। मैंने भी महादेव आनलाईन सट्टा ऐप को लेकर जगत विजन पत्रिका में स्टोरी प्रकाशित की थी। इस स्टोरी को लेकर मुझे भूपेश सरकार ने काफी परेशान किया है और धमकी तक दी हैं। यहां तक कि सीएम बघेल भी महादेव सट्टा ऐप को लेकर कई बार बयान दे चुके हैं कि महादेव सट्टा की जांच होनी चाहिए लेकिन आज वह खुद इसमें फंसते नजर आ रहे हैं।

महादेव आनलाईन सट्टा ऐप के तार मुख्यमंत्री भूपेश बघेल के विधानसभा क्षेत्र भिलाई दुर्ग पाटन से जुड़े हैं। इस क्षेत्र से ही ज्यादातर गिरफ्तारियां हुई हैं। और यह सट्टा वर्षों से चल रहा है। लेकिन यह बात समझ से परे लग रही है कि मुख्यिमंत्री के क्षेत्र में सट्टा ऐप चल रहा था और सरकार को पता तक नहीं था।

कांग्रेस में भीतरघात हावी

दूसरी तरफ प्रदेश में कांग्रेस सरकार बनने के कुछ ही दिनों बाद से मुख्यमंत्री की कुर्सी को लेकर मंत्री टीएस सिंहदेव और

भूपेश बघेल के बीच खींचतान होने लगी थी। दोनों कांग्रेस नेता अपने समर्थक विधायकों के साथ दिल्ली तक पहुंच गए थे। हालांकि केंद्रीय नेतृत्व द्वारा समझाने-बुझाने के बाद प्रदेश में मिलकर काम करने के वादे के साथ दोनों नेता छत्तीसगढ़ में साथ काम करते दिखे तो जरुर लेकिन थोड़े दिनों बाद ही टीएस सिंहदेव ने पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग से इस्तीफा दे दिया था। सीएम बघेल और सिंहदेव के बीच जारी मनमुटाव के चलते पार्टी दो गुटों में बंट रही थी। ऐसे में कांग्रेस का पूरा फ ोकस चुनाव से पहले इस गुटबाजी को खत्म करना था। चुनाव से छह महीने पहले कांग्रेस आलाकमान ने सिंहदेव को उप मुख्यमंत्री बनाकर प्रदेश कांग्रेस के भीतर जारी अंदरुनी कलह को शांत करने की कोशिश तो जरुर की। कांग्रेस आलाकमान ने सिंहदेव को उप मुख्यमंत्री बनाकर भले ही संगठन के भीतर की कलह को शांत कर दिया हो लेकिन छत्तीसगढ़ में कांग्रेस यह संदेश देने में असफ ल रही कि सिंहदेव की खोई गरिमा को उप मुख्यमंत्री बनाकर पार्टी ने वापस कर दिया।

असली किंग मेकर आदिवासी, राज्य में उठती रही है आदिवासी मुख्यमंत्री की मांग

लगभग 32 फीसदी आदिवासी जनसंख्या वाले छत्तीसगढ़ में हर चुनाव में इन सीटों से बड़ी संख्या में आदिवासी उम्मीदवार खड़े होते हैं। विधायक और मंत्री भी बनते हैं। छत्तीसगढ़ की आबादी में आदिवासियों की संख्या करीब एक तिहाई है। 1952 के बाद से समय-समय पर आदिवासी मुख्यमंत्री की मांग भी होती रहती है। हालांकि, अविभाजित मध्यप्रदेश और अब छत्तीसगढ़ के इतिहास में केवल एक बार ही किसी आदिवासी विधायक को मुख्यमंत्री बनने का अवसर मिल पाया। छत्तीसगढ़ की सारंगगढ़ विधानसभा के आदिवासी विधायक नरेश चंद्र सिंह मार्च 1969 में तेरह दिनों के लिए मुख्यमंत्री बने थे। अलग छत्तीसगढ़ राज्य बनने के बाद लगभग हर दो साल में आदिवासी मुख्यमंत्री की मांग उठती है लेकिन ऐसी आवाज़ें हमेशा अनसुनी रह जाती हैं। अब पहली बार ऐसा हुआ है, जब सर्व आदिवासी समाज ने अपना संगठन बनाकर चुनाव लड़ने की घोषणा की। इस बार सर्व आदिवासी समाज की हमर राज पार्टी चुनाव मैदान में है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में आज तक सिर्फ

Scanned with OKEN Scanner

एक आदिवासी मुख्यमंत्री रहे हैं। हमर राज पार्टी के मैदान में उतरने के बाद राजनीतिक गलियारे में यह चर्चा शुरु हो गई है कि आदिवासियों का यह राजनीतिक दल, कितने और किसके वोट काटेगा? क्या इसके उम्मीदवार जीत की दहलीज़ तक भी पहुंचेंगे या केवल पांच-दस हज़ार वोट हासिल कर के दूसरे राजनीतिक दलों का समीकरण बिगाड़ने का काम करेंगे? ख़ासतौर पर आदिवासी बहुल इलाकों में, जहां 07 नवंबर को मतदान होना है, वहां हमर राज पार्टी की क्या भूमिका होगी? छत्तीसगढ़ की 90 सीटों में से 10 सीटें अनुसूचित जाति के लिए और 29 सीटें आदिवासियों के लिए आरक्षित हैं। आज भी इस पुरानी धारणा पर राजनीतिक दलों का भरोसा बना हुआ है कि छत्तीसगढ़ में सत्ता की चाबी आदिवासी बहुल बस्तर से निकलती है। हालांकि, यह धारणा समय-समय पर टूटी भी है लेकिन अभी भी राजनीतिक दल, बस्तर के भरोसे अपनी नैया पार करना चाहते हैं। यही कारण है कि

2018 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी ने 29 आदिवासी सीटों में से 25 पर जीत हासिल की थी। जबकि तीन सीटों पर भाजपा के उम्मीदवार और एक सीट पर छत्तीसगढ़ जनता कांग्रेस जोगी के उम्मीदवार को जनता ने चुना था। लेकिन इस बार इन आदिवासी सीटों में से कुछ पर कांग्रेस, भाजपा के अलावा, आम आदमी पार्टी और हमर राज पार्टी ने भी अपने उम्मीदवार उतारे हैं।

कांग्रेस और भाजपा, दोनों ही बड़ी पार्टियां, मध्य छत्तीसगढ़ के मैदानी इलाकों की तुलना में, उत्तर और दक्षिण के आदिवासी इलाकों में मतदाताओं को लुभाने के लिए कहीं अधिक पसीना बहा रही हैं। कांग्रेस और भाजपा, दोनों ही दलों के शीर्ष नेता चुनाव की घोषणा से पहले ही आदिवासी बहुल इलाकों में कई चुनावी सभाओं को संबोधित कर चुके हैं। प्रधानमंत्री समेत केंद्र सरकार के कई मंत्री तो कई-कई दौरे कर चुके हैं। चुनाव की घोषणा के बाद से लगातार सभाओं का सिलसिला जारी है। 2018 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी ने 29 आदिवासी सीटों में से 25 पर जीत हासिल की थी। जबकि तीन सीटों पर भाजपा के उम्मीदवार और एक सीट पर छत्तीसगढ़ जनता कांग्रेस जोगी के

Scanned with OKEN Scanner

उम्मीदवार को जनता ने चुना था। लेकिन इस बार इन आदिवासी सीटों में से कुछ पर कांग्रेस, भाजपा के अलावा, आम आदमी पार्टी और हमर राज पार्टी ने भी अपने उम्मीदवार उतारे हैं। राज्य में भ्रष्टाचार और दूसरी गड़बड़िया तो हैं ही, आदिवासियों के कुछ और मुद्दे भी हैं। आदिवासी इलाकों में पंचायत एक्सटेंशन इन शेड्यूल एरिया कानून यानी पेसा के अधिकार छीनने, ग्राम पंचायतों की सहमति के बिना खनन के लिए सड़क बनाने, पंचायत की अनुमति के बिना खनन करने, मानवाधिकारों का हनन, लघु वन उपज की कम खरीद और आदिवासी अधिकार के मुद्दों पर वोट पड़ेंगे। भारतीय जनता पार्टी को 2013 के विधानसभा चुनाव में 41.6 फीसदी वोट मिले थे, जबकि 2018 में यह 8.6 फीसदी घटकर 33 फीसदी रह गए थे। इसके उलट कांग्रेस पार्टी को 2013 में मिले 39 फीसदी वोटों में 6.4 फीसदी की बढ़ोतरी हुई और 2018 में यह आंकड़ा बढ़कर 45.4 प्रतिशत हो गया। राजनीतिक विश्लेषक मानते हैं कि

भूपेश सरकार पर भारी है भ्रष्टाचार का मुद्दा

कांग्रेस सरकार बनने के बाद से ही भूपेश बघेल के नेतृत्व वाली छत्तीसगढ़ सरकार पर शराब घोटाला, कोयला घोटाला, गोबर घोटाला और पीएससी घोटाला के आरोप लगते रहे हैं। छत्तीसगढ़ सरकार में शामिल कई मंत्रियों, व्यापारियों और आला अधिकारियों पर ईडी की छापेमारी की ख़बरों ने सुर्खियां बटोरीं। कई बार तो ऐसा भी देखने में आया कि केंद्र सरकार की जांच एजेंसियां और राज्य सरकार आमने-सामने आ गए। मुख्यमंत्री भूपेश बघेल की निजी सचिव सौम्या चौरसिया समेत दो आईएएस अधिकारी समीर बिश्नोई और रानू साहू लेवी स्कैम मामले में अभी भी जेल में हैं। ईडी की टीम ने भारत सरकार के मनी लॉड्रिंग एक्ट के तहत सरकार के बीस से अधिक करीबी व्यापारियों, विधायकों और अधिकारियों के यहां छापेमारी की। लेकिन सवाल यही है कि इस सबके साथ क्या भाजपा भ्रष्टाचार को चुनावी मुद्दा बनाने में सफल रही है? रायपुर के वरिष्ठ पत्रकार रवि भोई मानते हैं कि भाजपा भ्रष्टाचार को चुनावी मुद्दा बनाने में पूरी तरह असफल रही। वे कहते हैं, भाजपा ने भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाने की कोशिश की लेकिन भ्रष्टाचार मुद्दा नहीं बन पाया। क्योंकि भ्रष्टाचार का प्रभाव शहरों में ज्यादा दिखा गांवों में नहीं। गांवों में कांग्रेस की अधिक दर पर धान खरीदी, बोनस और कर्जा माफी ने भ्रष्टाचार को मुद्दा नहीं बनने दिया।

Scanned with OKEN Scanner

कांग्रेस के वोट प्रतिशत बढ़ने के पीछे आदिवासी इलाको की सबसे बड़ी भूमिका रही। हालात ये हैं कि माओवादी हिंसा के माहौल में भी पिछले चुनाव में कई सीटों पर 80 फीसदी तक मतदान हुआ है। पिछले चुनाव में 20 आदिवासी सीटों पर 80 से 86 फीसदी मतदान हुआ, जबकि छह सीटों पर 70 से 80 फीसदी के बीच मतदान हुआ।

धान ख़रीदी, बोनस और कर्जा माफी के बूते कांग्रेस

कांग्रेस राज्य में दोबारा सत्ता पर काबिज होने की पुरजोर कोशिश में जुटी है, वहीं भाजपा भी अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रही। साल 2023 का विधानसभा चुनाव कई मायनों में भिन्न है। कांग्रेस का आला नेतृत्व इस कोशिश में है कि चुनावी एजेंडा वो सेट करे। धान खरीद, शिक्षा और स्वास्थ्य मुद्दे हों। हालांकि छत्तीसगढ़ की

Scanned with OKEN Scanner

निवर्तमान भूपेश बघेल सरकार ने बहुचर्चित गौधन न्याय योजना के साथ ही राम को केन्द्र में रखते हुए राम वन गमन पथ के निर्माण और उसके प्रचार-प्रसार पर खासा खर्च किया है। बात अगर राजनीनिक दलों के बीच जारी खींचतान और समीकरण की करें तो वर्तमान समय में दो प्रमुख दलों कांग्रेस और भाजपा के अलावा बहुजन समाज पार्टी, छत्तीसगढ़ जनता कांग्रेस, गोंडवाना गणतंत्र पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा), हमर राज पार्टी, निर्बल इंडियन शोषित हमारा आम दल (निषाद) और आम आदमी पार्टी जैसे दल मैदान में दिख रहे हैं लेकिन लाख टके का सवाल यह भी है कि क्या छत्तीसगढ़ जैसे राज्य में जहां परंपरागत तौर पर दो ध्रुवों (कांग्रेस और भाजपा) के वोट बैंक में अन्य दल कितना सेंध लगा पाएंगे?

जातिगत राजनीति के भरोसे भूपेश बघेल

देश में इन दिनों जाति आधारित गणना या कहें कि ओबीसी गणना को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर बहस छिड़ी हुई है। पिछड़ा और अति-पिछड़ा कार्ड के साथ ही हिन्दुत्व की राजनीति को साधते हुए भारतीय जनता पार्टी दो बार केन्द्र की सत्ता पर काबिज हो चुकी है। तो अब कांग्रेस भी जाति आधारित गणना के सहारे देश की राजनीतिक रुख को अपने पक्ष में करने की जद्दोजहद में जुट गई है। उसी कड़ी में कांग्रेस शासित राज्यों में कांग्रेस ने जातीय जनगणना कराने के वादे कर चुकी है। कांग्रेस की राष्ट्रीय महासचिव प्रियंका गांधी ने छत्तीसगढ़ में एक रैली को

कांग्रेस पार्टी ने प्रदेश में ओबीसी राजनीति को साधते हुए कुल 30 सीटों पर ओबीसी प्रत्याशी उतारे हैं। जिसमें कुर्मी जाति से 09 प्रत्याशी और साहू समाज से 09 प्रत्याशियों को मैदान में उतारा है। जबकि भाजपा ने 31 सीटों पर ओबीसी प्रत्याशी उतारे हैं। जिसमें सबसे ज्यादा 11 प्रत्याशियों को साहू समाज से और कुर्मी जाति से 08 प्रत्याशियों को मैदान में उतारा है। ऐसा कहा जाता रहा है कि साहू समुदाय भाजपा का पारंपरिक वोटर रहा है लेकिन पिछले चुनाव में यह समीकरण बदल गया था।

संबोधित करते हुए कहा कि अगर कांग्रेस की सरकार दोबारा सत्ता में आती है तो राज्य में जातीय जनगणना कराई जाएगी। इससे पहले राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने भी बिहार की तर्ज पर राज्य में जातीय जनगणना कराने की बात कही थी। भाजपा और कांग्रेस दोनों पार्टियां प्रदेश में ओबीसी जातियों को साधने की भरपूर कोशिश में जुटी हैं। चुनाव से चंद दिनों पहले ही छत्तीसगढ़ सरकार ने सरकारी नौकरियों में ओबीसी आरक्षण को बढ़ाने की कवायद शुरूकर दी थी। हालांकि बिलासपुर हाईकोर्ट ने याचिका पर सुनवाई करते हुए आरक्षण को निरस्त कर दिया। छत्तीसगढ़ मुख्यमंत्री

भूपेश बघेल खुद पिछड़ी जातियों में शुमार की जाने वाली कुर्मी जाति से आते हैं। वहीं कांग्रेस पार्टी ने प्रदेश में ओबीसी राजनीति को साधते हुए कुल 30 सीटों पर ओबीसी प्रत्याशी उतारे हैं। जिसमें कुर्मी जाति से 09 प्रत्याशी और साहू समाज से 09 प्रत्याशियों को मैदान में उतारा है। जबकि भाजपा ने 31 सीटों पर ओबीसी प्रत्याशी उतारे हैं। जिसमें सबसे ज्यादा 11 प्रत्याशियों को साहू समाज से और कुर्मी जाति से 08 प्रत्याशियों को मैदान में उतारा है। ऐसा कहा जाता रहा है कि साहू समुदाय भाजपा का पारंपरिक वोटर रहा है लेकिन पिछले चुनाव में यह समीकरण बदल गया था। साहू समाज के बीच यह चर्चा थी कि कांग्रेस से ताम्रध्वज साहू को मुख्यमंत्री बनाया जा सकता है। जबकि चुनाव के बाद कांग्रेस केंद्रीय नेतृत्व ने कुर्मी समुदाय से भूपेश बघेल को मुख्यमंत्री बनाने का निर्णय ले लिया। ऐसे में सवाल यह है कि क्या इस बार जब घोषित तौर पर कांग्रेस भूपेश बघेल के चेहरे पर चुनाव लड़ रही है तो प्रदेश में अहम पिछड़े समुदाय में शुमार साहू इस बार अधिकांशतः किसके साथ

रहेंगे? भूपेश बघेल के मुख्यमंत्री बनने के बाद प्रदेश में पिछड़े वर्ग की राजनीति गर्मायी है। मैदानी क्षेत्र में संख्या के आधार पर दो प्रमुख जातियां हैं साहू और कुर्मी। बघेल के कुर्मी होने की वजह से भाजपा ने साहू, जिनका झुकाव परंपरागत रूप से भी भाजपा की ओर रहा है को वापस अपनी ओर करने का प्रयास किया है जो 2018 में कांग्रेस की ओर शिफ़्ट हुए थे। भाजपा ने अपना प्रदेश अध्यक्ष आदिवासी विक्रम उसेंडी की जगह बिलासपुर सांसद अरु ण साव को बनाया, जो साहू समाज से आते हैं। आरक्षण को लेकर भूपेश सरकार के निर्णय, युवाओं के आंदोलन से यह स्पष्ट होने लगा कि प्रदेश की राजनीति अब पिछड़ा वर्ग केंद्रित हो रही है। आगामी चुनाव को लेकर कांग्रेस जो वादे कर रही है उसमें से एक महत्वपूर्ण वादा सरकार बनने पर जातीय जनगणना कराने का है, जिस प्रकार बिहार में हुआ है। यह कदम सीधे तौर पर ओबीसी मतदाताओं को लुभाने का कदम है। ताम्रध्वज साहू को मुख्यमंत्री या उपमुख्यमंत्री ना बनाना व बीरनपुर में हुई घटना जिसमें एक साहू युवक की हत्या कर दी गई थी। जैसे मुद्दों की वजह से साहू समाज फिर एक बार कांग्रेस पर 2018 जैसा विश्वास जतायेगा, इसकी संभावना थोड़ी कम है।

पिछले चुनाव से यह चुनाव कितना भिन्न?

छत्तीसगढ़ का विधानसभा चुनाव कांग्रेस के लिए हिंदी पट्टी में अस्तित्व बचाने का चुनाव है। छत्तीसगढ़ ही एक मात्र राज्य है जहां कांग्रेस पूर्ण बहुमत के साथ सरकार में है। कांग्रेस पार्टी अन्य प्रदेशों में भी छत्तीसगढ़ मॉडल लागू करने की बात जोर-शोर से कर रही है। हाल ही में राजस्थान में अशोक गहलोत ने छत्तीसगढ़ सरकार की गोधन न्याय योजना की तर्ज पर कहा है कि कांग्रेस सरकार बायोगैस का उत्पादन करने के लिए पशुओं का गोबर 2 रूपये प्रति किलो खरीदेगी। वहीं कांग्रेस सांसद राहुल गांधी ने छत्तीसगढ़ में अपनी पहली चुनावी सभा को संबोधित करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि उनके एजेंडे में शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मुद्दे पहले पायदान पर रहेंगे। अव्वल तो वे केजी से पीजी तक मुफ्त शिक्षा की बात कह रहे हैं। तो वहीं धान खरीद के रेट को 2500 से बढ़ाकर 3000 रूपये करने की बात भी कह रहे। जाहिर तौर राहुल गांधी ने राज्य के भीतर चुनावी एजेंडा सेट कर दिया है और अब चुनौती भाजपा और अन्य दलों के सामने है कि वे लोगों का रु झान खुद की ओर कैसे मोड़ें? भाजपा में शीर्ष लीडरशिप रमन सिंह, ब्रजमोहन अग्रवाल या सरोज पांडेय सभी अपर कास्ट से हैं। छत्तीसगढ़ में अपर कास्ट की संख्या बहुत कम है। इसीलिए इस बार चुनाव में भाजपा ने प्रयोग किया और कई बड़े नेताओं का टिकट काटकर नए लोगों को दिया है। इस प्रयोग का लाभ भले ही भाजपा को इस चुनाव में न मिले लेकिन आने वाले चुनावों में इसका लाभ मिल सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

विधानसभा चुनाव 2023
राजस्थान

धुंधली दिख रही राजस्थान की सियासी तस्वीर

Scanned with OKEN Scanner

राजस्थान एक बार फिर चुनाव के मुहाने पर है, ऐसे में हर आम और खास की जुबान पर एक ही सवाल है कि इस बार चुनावी उंट किस करवट बैठेगा? दरअसल, राजस्थान में यह रवायत रही है कि जो पार्टी वर्तमान में सत्तासीन है, जनता उसे 'पैदल' कर देती है और विपक्ष में रहने वाली पार्टी की ताजपोशी कर देती है। कमोवेश जनता के इस तेवर को देखकर वर्तमान में राजस्थान में सत्तारूढ़ कांग्रेस के माथे पर पसीने की बूंदें साफ देखी जा सकती हैं। भाजपा का मनोबल थोड़ा कमजोर दिख रहा है। इसके पीछे राजस्थान भाजपा में आपसी गुटबाजी मुख्य वजह है। विधानसभा चुनाव के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान के लोग यह बता पाने में समर्थ नहीं हो रहे हैं कि राजस्थान में उंट किस करवट बैठेगा। कांग्रेस की वापसी होगी, सरकार बदलने का रिवाज बदलेगा या फिर दस्तूर जारी रहेगा- इस बारे में अभी से कोई कुछ बताने की स्थिति में नहीं है। राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जिस बारे में न बीजेपी आश्वस्त है न ही कांग्रेस। हर बार सरकार बदलने वाले इस प्रदेश में जीत की बारी अब बीजेपी की है। लेकिन, वास्तव में बीजेपी खुद अपने परफॉर्मेंस को लेकर आश्वस्त नहीं है। बीजेपी प्रदेश में नेतृत्व या चेहरा नहीं तय कर सकी है जिसे आगे रखकर चुनाव लड़ा जा सके। वहीं, कांग्रेस स्पष्ट नेतृत्व के बीच लड़ाई में फंसी है।

राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जिस बारे में न बीजेपी आश्वस्त है न ही कांग्रेस। हर बार सरकार बदलने वाले इस प्रदेश में जीत की बारी अब बीजेपी की है। लेकिन, वास्तव में बीजेपी खुद अपने परफॉर्मेंस को लेकर आश्वस्त नहीं है। बीजेपी प्रदेश में नेतृत्व या चेहरा नहीं तय कर सकी है जिसे आगे रखकर चुनाव लड़ा जा सके। वहीं, कांग्रेस स्पष्ट नेतृत्व के बीच लड़ाई में फंसी है।

कांग्रेस और बीजेपी दोनों ही दलों का आलाकमान नेतृत्व के संकट का हल ढूंढने में दिलचस्पी दिखाने में पीछे रहे हैं। लेकिन कर्नाटक में विधानसभा चुनाव नतीजों के बाद अब दोनों ही दलों की यह प्राथमिकता बन गयी है कि जो दल सबसे पहले नेतृत्व का संकट हल कर पाएगा, उसके लिए संभावना अधिक रहेंगी। 2018 के विधानसभा चुनाव में बीजेपी पर कांग्रेस को

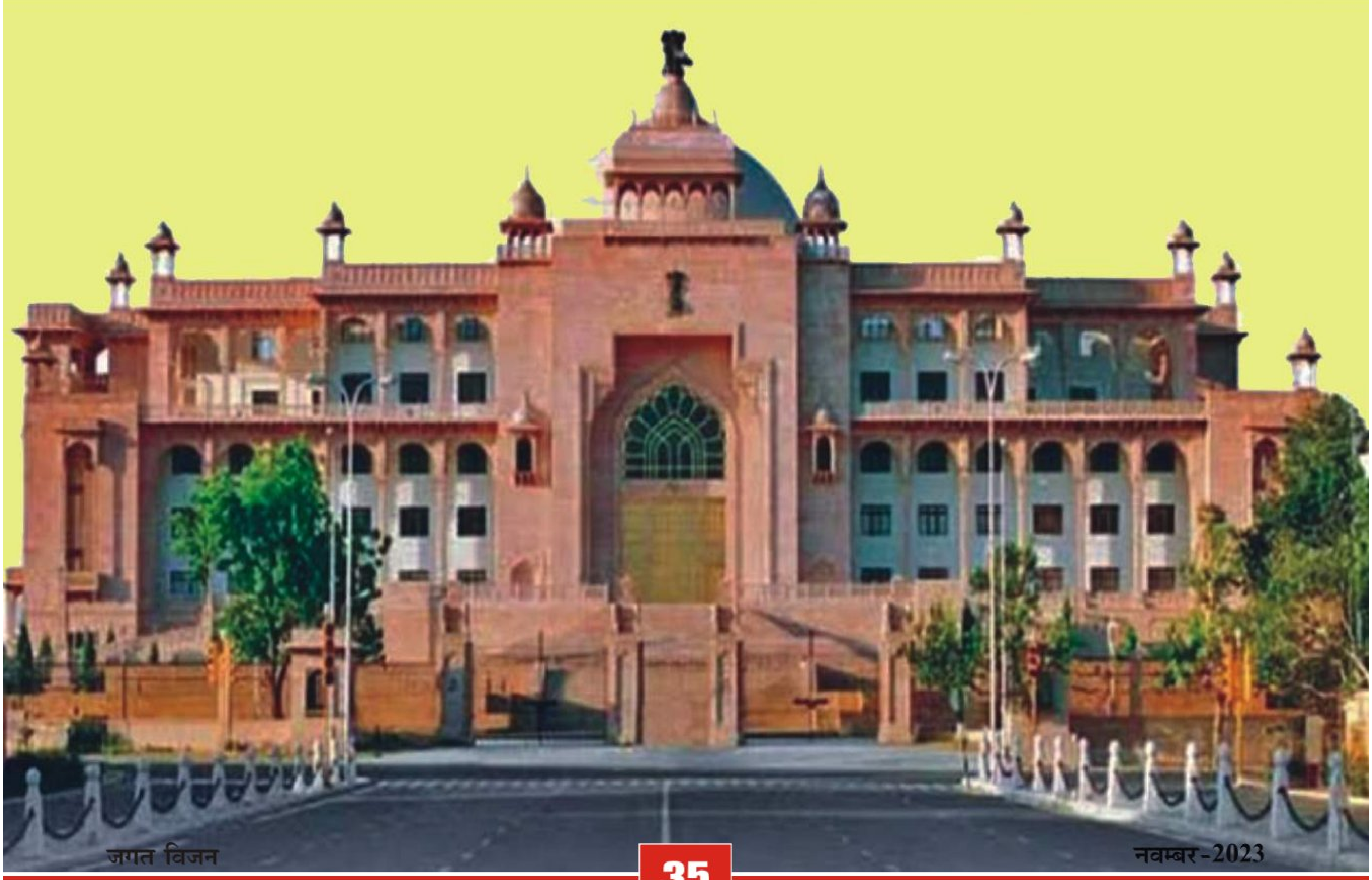

1 प्रतिशत से कम वोटों की बढ़त थी। कुछ महीने बाद हुए 2019 के लोकसभा चुनाव में बीजेपी को 12 प्रतिशत से ज्यादा की बढ़त हासिल हो गयी। हालांकि रोचक तथ्य ये भी है कि बीते साढ़े चार साल में हुए दो तिहाई उपचुनाव कांग्रेस ने जीते हैं। इस वक्त राजस्थान में बीजेपी के 22 सांसद रह गये हैं। ये स्थिति राजस्थान के बारे में राजनीतिक विश्लेषकों को कोई स्पष्ट निष्कर्ष निकालने से रोकती है।

राजस्थान गंवाने के बाद भी बीजेपी ने कुछ सबक सीखा हो, ऐसा नहीं लगता। वसुंधरा राजे उपेक्षित पड़ी रहीं। बीजेपी में कई गुट बन गये। इसके बावजूद कभी गुटों को जोड़ने की पहल बीजेपी में नहीं दिखाई दी। दो विधानसभाओं के चुनाव नतीजे और वोट प्रतिशत का अध्ययन ये बताता है कि राजस्थान में कांग्रेस लगातार मजबूत हुई है। मगर, लोकसभा चुनाव के नतीजे कांग्रेस की उम्मीदों पर पानी फेरने वाले साबित हुए हैं। लोकसभा चुनाव में सभी 25 सीटें कांग्रेस हार गयी थी। बीजेपी को 61 प्रतिशत वोट मिले जबकि कांग्रेस 34 प्रतिशत वोट ही पा सकी। राजस्थान के 55 प्रतिशत आदिवासियों ने बीजेपी के लिए वोट किया जबकि कांग्रेस के लिए 40 प्रतिशत लोगों ने मतदान किया। बीजेपी के लिए ये सवाल बड़ा है कि वसुंधरा राजे के नेतृत्व में चुनाव लड़ा जाएगा या फिर कोई नया चेहरा सामने आएगा। जिस तरह से मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने बीते दिनों ये खुलासा किया कि संकट की घड़ी में वसुंधरा राजे के समर्थन से ही उनकी सरकार बनी थी, उस कारण बीजेपी की अंतर्कलह बढ़ गयी जो गहलोत का वास्तव में मकसद था। बीजेपी का नेतृत्व वसुंधरा को नियंत्रण में रख पाता है या नहीं, इस पर निश्चित रूप से बीजेपी का सियासी भविष्य निर्भर करेगा। कांग्रेस अशोक गहलोत और सचिन पायलट के बीच खुले संघर्ष का सामना कर रही है। पार्टी आलाकमान किसी एक का समर्थन या विरोध नहीं कर पा रहा है। ऐसा लगता है कि अशोक गहलोत और सचिन पायलट ही सत्ता और विपक्ष बन गये हैं। कांग्रेस और बीजेपी में फर्क ये है कि अशोक गहलेत अपने दम पर चुनाव की तैयारी शुरू कर चुके हैं। सचिन पायलट भी उसी राह पर हैं। मगर, बीजेपी या बीजेपी का स्थानीय नेतृत्व अब तक चुनाव मैदान में कमर नहीं कस

राजस्थान गंवाने के बाद भी बीजेपी ने कुछ सबक सीखा हो, ऐसा नहीं लगता। वसुंधरा राजे उपेक्षित पड़ी रहीं। बीजेपी में कई गुट बन गये। इसके बावजूद कभी गुटों को जोड़ने की पहल बीजेपी में नहीं दिखाई दी। दो विधानसभाओं के चुनाव नतीजे और वोट प्रतिशत का अध्ययन ये बताता है कि राजस्थान में कांग्रेस लगातार मजबूत हुई है। मगर, लोकसभा चुनाव के नतीजे कांग्रेस की उम्मीदों पर पानी फेरने वाले साबित हुए हैं।

Scanned with OKEN Scanner

सका है। विधानसभा चुनाव से पहले पार्टी आलाकमान ने वसुंधरा राजे को कोई बड़ी जिम्मेदारी नहीं दी है। इससे राजे और उनके समर्थक नाराज बताए जा रहे हैं। परिवर्तन यात्रा को लेकर भी पार्टी ने राजे को कोई बड़ी जिम्मेदारी नहीं दी है। इससे पहले हुए भाजपा के कई कार्यक्रम में राजे शामिल नहीं हुई थीं। कुछ दिनो पूर्व गंगापुर सिटी में अमित शाह के कार्यक्रम में भी वसुंधरा राजे शामिल नहीं हुईं जबकि लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला उस कार्यक्रम में उपस्थित थे। राजस्थान में ओल्ड पेंशन स्कीम और हेल्थ गारंटी बड़े नारे हैं जिन्हें सामने रखकर अशोक गहलोत चुनावी तस्वीर सजा रहे हैं। कर्नाटक की तरह आलाकमान की ओर से लोककल्याणकारी नीतियों को अमली जामा पहनाने वाली गारंटी ही चुनाव का मुद्दा होंगे। हालांकि बीजेपी हर मोर्चे पर अशोक गहलोत सरकार को विफल करार दे रही है। मगर, बीजेपी को अब चेहरा सामने लाना होगा ताकि समय रहते राजनीतिक संघर्ष को और तेज किया जा सके। राजस्थान की सियासत में गुर्जर महत्वपूर्ण हैं। किसानों और आदिवासियों की भी भूमिका है। अर्जुन राम मेघवाल को कानून मंत्री बनाकर बीजेपी ने चुनाव की तैयारी शुरू कर दी है। सतीश पूनिया, अश्विनी वैष्णव, ओम बिड़ला, गजेंद्र सिंह शेखावत जैसे नेता हर

राजस्थान में ओल्ड पेंशन स्कीम और हेल्थ गारंटी बड़े नारे हैं जिन्हें सामने रखकर अशोक गहलोत चुनावी तस्वीर सजा रहे हैं। कर्नाटक की तरह आलाकमान की ओर से लोककल्याणकारी नीतियों को अमली जामा पहनाने वाली गारंटी ही चुनाव का मुद्दा होंगे। हालांकि बीजेपी हर मोर्चे पर अशोक गहलोत सरकार को विफल करार दे रही है।

वर्ग और समुदाय को प्रतिनिधित्व देते हुए बीजेपी को मजबूत कर रहे हैं। राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत का दावा है कि उनकी सरकार में आम तौर पर संतोष है। कहीं कोई एंटी इनकंबेंसी नहीं है। 09 में से 06 उपचुनावों में जीत को गहलोत सबूत के तौर पर पेश करते हैं। मगर, दावे और सच्चाई में फर्क होता है। आम मतदाता जब अपनी जुबान से या फि र चुनाव में वोट देकर ही वर्तमान सरकार के बारे में अपना मत देता है। ऐसे में अशोक गहलोत की सरकार को दोबारा सत्ता में लाने की कोशिश दिखेगी या फिर रिवाज कायम रहेगा कि पिछली बार कांग्रेस, तो इस बार बीजेपी। नतीजे चाहे जो हों दिलचस्प चुनाव का गवाह बनने जा रहा है। ये विधानसभा ऐसे समय हो रहे हैं जब पूरे देश में जातिगत सर्वे की मांग ने जोर पकड़ी है। राजस्थान में कांग्रेस सरकार ने बिहार की तर्ज पर जातिगत सर्वे का आदेश जारी किया है। मध्यप्रदेश में वह इसका वादा कर चुकी है।

Scanned with OKEN Scanner

बीजेपी इस मुद्दे पर कांग्रेस पर समाज को बांटने का आरोप लगाकर लोगों के बीच में है। चुनाव के नतीजे जातिगत सर्वे पर जनमत संग्रह माने जाएंगे।

राजस्थान में जमीन तलाश रही आम आदमी पार्टी

राजस्थान में आम आदमी पार्टी अपने पैर जमा करने की पूरी कोशिश कर रही है। 2023 के आम चुनाव में वह पूरी दमखम के साथ मैदान में उतरी है। साथ ही प्रयास कर रही है कि प्रदेश में आप की सरकार बने। इसकी बानगी हम हम पिछले दिनों दिल्ली के मुख्यरमंत्री अरविंद केजरीवाल की एक सभा में दिये गये भाषण से लगा सकते हैं। अरविंद केजरीवाल ने सभा में लोगों को रिझाने के लिए दिल्ली की तर्ज पर स्कूल खोलने, तीन सौ यूनिट मुफ्त बिजली देने, हर गांव में मोहल्ला क्लीनिक खोलने जैसे वादों का पासा फ ेंका था। सभा में

राजस्थान में आम आदमी पार्टी अपने पैर जमा करने की पूरी कोशिश कर रही है। 2023 के आम चुनाव में वह पूरी दमखम के साथ मैदान में उतरी है। साथ ही प्रयास कर रही है कि प्रदेश में आप की सरकार बने।

अच्छी भीड़ जुटी थी। जब केजरीवाल और भगवत मान ने बीजेपी-कांग्रेस को कोसा तो लोगों ने तालियां बजाई गई लेकिन बड़ा सवाल यह है कि राजस्थान में आम आदमी पार्टी का भविश्य क्या है? राजस्थान में दो मुख्य दलों बीजेपी-कांग्रेस का ही वर्चस्व है। राज्य के मतदाता बारी-बारी से इन्हीं दलों को सत्ता सौंपते आ रहे हैं। इस बार जहां बीजेपी सत्तापलट के दावे कर रही है, वही कांग्रेस फिर से सरकार बनाने के लिए जी-तोड़ कोशिश में लगी है। चुनावी रणभेरी बजने को है और इसी बीच आम आदमी पार्टी मैदान में कूद पड़ी है। केजरीवाल ने पेपर लीक, भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों पर गहलोत सरकार को घेरा और गहलोत-वसुंधरा राजे के बीच मिलीभगत के आरोप लगाए। उन्होंने खुद को शहीद भगत सिंह का चेला बताते हुए जनता से कहा कि राजस्थान में मौका दीजिए। आपका ऐसा दिल जीतेंगे कि 50 साल तक गहलोत-वसुंधरा याद नहीं आएंगे। अच्छी शिक्षा, अच्छी नौकरी, अच्छा इलाज सिर्फ केजरीवाल दे सकता है और कोई नहीं दे सकता। भ्रष्टाचार, गंदी राजनीति मुझे नहीं आती, मुझे सिर्फ काम करना आता है। केजरीवाल ने राजस्थान में जनता से मौका तो मांगा है लेकिन यहां आप

की राह आसान नहीं है। राज्य में पार्टी संगठनात्मक रूप से बहुत कमजोर है। इसीलिए पार्टी ने पंजाब से सटे श्रीगंगानगर में चुनावी अभियान का आगाज किया था। पार्टी को पंजाब से सटे पंजाबी भाषी बहुल श्रीगंगानगर और हनुमानगढ़ जिलों में उम्मीद नजर आती है क्योंकि 'मिनी पंजाब' कहे जाने वाले इस इलाके की राजनीति पर पड़ोसी राज्य का थोड़ा-बहुत असर पड़ता है।

वैसे भी भाजपा के गढ़ गुजरात में पांच सीटें जीतकर और लगभग चौदह फीसदी वोट हासिल करके आप राष्ट्रीय पार्टी का दर्जा प्राप्त कर चुकी है। दिल्ली एवं पंजाब में उसकी सरकार है। गोवा विधानसभा में उसकी दो सीटें हैं। कनार्टक में पार्टी को मतदाताओं ने पूरी तरह नकार दिया लेकिन इससे उसके देश भर में विस्तार के मंसूबों पर कोई फर्क नहीं पड़ा है। विस्तार के मंसूबे के साथ आप राजस्थान में पहुंची है। यहां उसके पास खोने के लिए कुछ नहीं है। विधानसभा चुनाव सिर पर हैं। चुनाव में जो कुछ भी उसके हिस्से में आएगा, वह उसकी राजनीतिक जमीन को उर्वर बनाने में सहायक होगा। पढ़े-लिखे लोगों और स्कूल-अस्पताल की राजनीति के नाम पर केजरीवाल राजस्थानी मतदाताओं को कितना आकर्षित कर पाएंगे, यह देखना दिलचस्प होगा। वहीं देखना होगा कि आप की लुभावनी घोषणाएं राजस्थांन के लोगों पर कितना असर डाल पाती हैं।

हमारे देश में चुनाव आते ही राजनीतिक पार्टियां वोटरों को लुभाने के लिए मुफ्त की रेवड़ियां बांटना शुरू कर देती हैं। यह सिलसिला आज से नहीं बल्कि दशकों से चला आ रहा है। वह चाहे केन्द्र के चुनाव हो या राज्यों चुनाव हों राजनीतिक पार्टियों का मानना है कि इससे वोटर लोभ में आकर वोट करती हैं।

आखिर पार्टियां कब तक मुफ्त की रेवड़ियां बांटती रहेंगी

हमारे देश में चुनाव आते ही राजनीतिक पार्टियां वोटरों को लुभाने के लिए मुफ्त की रेवड़ियां बांटना शुरू कर देती हैं। यह सिलसिला आज से नहीं बल्कि दशकों से चला आ रहा है। वह चाहे केन्द्र के चुनाव हो या राज्यों चुनाव हों राजनीतिक पार्टियों का मानना है कि इससे वोटर लोभ में आकर वोट करती हैं। लेकिन यहां सवाल इस बात का भी है कि इससे देश-प्रदेश की अर्थव्यवस्था का क्यो हाल होता है। अर्थव्यवस्था गर्त में चली जाती है। फि र यही सरकार चुनाव बाद टैक्स के रूप में जनता पर अनावश्यक बोझ डाल देती हैं। जनता सरकार की इन बारीकियों को समझ ही नहीं पाती है। आखिर ऐसी मुफ्त की रेबड़ी का क्या मतलब है। हमारी पार्टियों को इस

विषय पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। मुफ्तकी रेबड़ी का हाल हम अमेरिका की बिगड़ती अर्थव्यवस्था से समझ सकते हैं। आज अमेरिका की आर्थिक व्यवस्था इसी कारण से अस्त व्यस्त है। हम कल्पना कर सकते है कि क्या अमेरिका जैसा विकसित देश भी डिफाल्ट हो सकता है। आज अमेरिका पर कुल कर्ज बढ़कर 31.46 ट्रिलियन डॉलर हो चुका है। इसमें से 10 ट्रिलियन डॉलर तो पिछले तीन साल में ही बढ़ा है। वहीं हर भारतीय पर 1.16 लाख रूपये का कर्ज है। भारत के लिए विशेष चिंता है। चूंकि तमाम राजनीतिक पार्टियां आर्थिक अनुशासन को ताक पर रखकर खूब मुफ्त की सौगातें बांट रही हैं। एक

Scanned with OKEN Scanner

समय था आश्वासन भर से काम चल जाता था, लेकिन कम से कम सात दशकों बाद जनता इतनी तो समझदार हो ही गई है कि रेवड़ियां बंटवा ही लेती है। मसलन ताजा ताजा कर्नाटक में महिलाएं बसों में टिकट खरीदने से मना कर रही हैं। लोगों ने बिजली बिल देना बंद कर दिया है। फि र रेवड़ियों की घोषणा कर लागू ना करें तो चुनाव तो हमारे देश में हर साल होते हैं। और एक बार विश्वास तोड़ा नहीं कि जनता दोबारा विश्वास नहीं करती। सो गजब का दुष्चक्र निर्मित हो गया है। खर्च करने के लिए आय बढ़ानी होगी और आय बढ़नी नहीं है तो कर्ज लेना ही पड़ेगा और कर्ज लेने के लिए विधि विधान है नहीं। और यदि आय बढ़ाने के लिए कर लगाए या अन्यान्य उपाय किये तो जनता पर ही बोझ पड़ेगा। कहने का मतलब एक हाथ दिया और दूसरे हाथ से वापस ले लिया चूंकि जनता अब इस गणित को भी खूब जो समझने लगी है। दरअसल खजाना खिसक जाए, राजनीतिक पार्टियों को फ र्क नहीं पड़ता, वोट बैंक नहीं खिसकना चाहिए। सत्ता बरकरार रहे तो पावरफुल बने रहेंगे और पावर है तो स्टेटस सिंबल कायम है। अमेरिका में तो सरकार को आर्थिक अनुशासन में रखने के लिए संविधान में व्यवस्था है लेकिन भारत में नहीं है। अमेरिकी सरकार ने तय व्यवस्था का पालन नहीं किया तो संकट उपजा है। सत्ताधारी पार्टी के लोक लुभावन वादों के लिए किये जा रहे खर्चों पर कोई सवाल नहीं है बल्कि जनता से कहा जा रहा है कि हमें वोट दो हम तुम्हें कहीं ज्यादा देंगे, फलाना देंगे, ढिमकाना देंगे। अमेरिका का उदाहरण भारत की केंद्र और राज्य सरकारों के लिए एक सबक है, जो राजनैतिक फायदे के लिए कल्याणकारी योजनाओं में मुफ्त सुविधाओं पर सरकारी खजाना लुटाने में जुटी रहती है। राजनीतिक पार्टियों की इस तरह की पहल पर निश्चित रू प से रोक लगनी चाहिए जो बिना सोचे विचारे देश को रसातल की ओर ले जाने के लिए काम कर रही हैं।

Scanned with OKEN Scanner

प्रदूषण से मुक्ति के लिए गंभीरता की दरकार

डॉ. अनिल कुमार निगम

दिल्ली और एनसीआर की हवा में एक बार फिर जहर घुल गया है। दीपोत्सव का त्योहार अभी दूर है लेकिन देश की राजधानी की हवा की गुणवत्ता का इंडेक्स (एक्यूआई) 300 के पार चला गया है। यह स्थिति बेहद चिंताजनक है। हर वर्ष प्रदूषण का कारण दिवाली में आतिशबाजी से होने वाले प्रदूषण, पंजाब, हरिया णा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जलाई जाने वाली पराली को मानकर कुछ चंद उपाय कर लोगों को प्रदूषण के दंश को झेलने के लिए छोड़ दिया जाता है। पिछले लगभग एक दशक में अक्टूबर से जनवरी के बीच हर साल यह समस्या गहरा जाती है। दिल्ली सरकार भी जब आग लगे तो खोदो कुआं वाली कहावत चरितार्थ करते हुए प्रदूषण कम करने के चंद उपाय करती है जिससे कुछ तात्कालिक राहत भी मिल जाती है, लेकिन इस समस्या का स्थायी समाधान निकाले जाने के बारे में गंभीर प्रयास देखने को नहीं मिलते। प्रदूषण की गंभीरता को यहां से समझना चाहिए कि अक्टूबर आते ही सांस और दमा के मरीजों की संख्या बढ़ने लगी है। इसीलिए उच्चतम न्यायालय ने वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीएक्यूएम) से दिल्ली और उसके आसपास वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उठाए जा रहे कदमों पर रिपोर्ट मांगी है। दिल्ली-एनसीआर में हर साल अक्टूबर से नवंबर में प्रदूषण स्तर बेहद खतरनाक स्तर तक पहुंच जाता है। प्रदूषण बढ़ने का प्रमुख कारण सर्दियों में हवा का घनत्व बढ़ना और तापमान का गिरना है। इसके चलते प्रदूषण नीचे ही रह जाता है और स्मॉग के तौर पर दिखता है। यही स्मॉग कोहरे के साथ मिलकर प्रदूषण और तरह-तरह की गैस एक घातक मिश्रण को जन्म देती है। सर्दियों में हवा भी काफी कम चलती है, ऐसे में प्रदूषण लगातार बढ़ता रहता है। गर्मियों में तापमान अधिक होने से हवा में घनत्व काफी कम हो जाता है और प्रदूषण आसानी से छंट जाता है। दिल्ली एनसीआर में प्रदूषण बढ़ने के अन्य कारण भी हैं। दिल्ली की आबादी पिछले एक दशक में बहुत तेजी से बढ़ी है। यहां की आबादी 3 करोड़ से अधिक हो चुकी है। इसी तरह एनसीआर की आबादी लगभग साढ़े 4 करोड़ से अधिक है। आबादी का

ग्रोथ रेट काफी अधिक है। आबादी बढ़ने के साथ ही दिल्ली एवं एनसीआर में वाहनों का दबाव भी तेजी से बढ़ा रहा है। दिल्ली का विश्व में सबसे अधिक वाहनों वाला शहर माना जाता है। यहां के निवासी सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था का इस्तेमाल करने की जगह निजी वाहनों का प्रयोग अधिक करते हैं। विकास के नाम पर दिल्ली एवं एनसीआर में निर्माण कार्य भी बेतरतीब तरीके से होता रहता है। इससे धूल के कण हवा में जहर घोलने का काम करते हैं। इसके अलावा खेतों में पराली जलना भी प्रदूषण का बड़ा कारण है। हरियाणा और पंजाब समेत कई राज्यों में किसान इन महीनों में पराली जलाते हैं, जिससे स्मॉग की समस्या बढ़ जाती है। प्रदेश सरकारें आज तक इस समस्या का स्थायी समाधान नहीं निकाल सकी हैं। सरकारें किसानों को यह चेतावनी देकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती हैं कि अगर किसानों ने पराली जलाई तो उनको जुर्माना देना होगा, लेकिन सरकारें भी यह बात अच्छी तरीके से जानती हैं कि किसान के पास पराली को डिस्पोज करने का कोई विकल्प नहीं है। पराली का डिस्पोजल इतना महंगा है कि किसान सरकार के सहयोग के बिना उसे कर ही नहीं सकते है। दिल्ली में हवा अत्यधिक खराब होने के कारण वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीएक्यूएम) ने अधिकारियों को ग्रेडेड रिस्पांस के चरण दो को लागू करने का निर्देश दिया है। ग्रेप-2 के नियमों के तहत केंद्र सरकार दिल्ली और एनसीआर में पार्किंग शुल्क बढ़ा देगी, जिससे पब्लिक ट्रांसपोर्ट सिस्टम को ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल किया जाए। सरकार मेट्रो और इलेक्ट्रिक बसों के फेरे भी बढ़ाएगी। इसके अलावा सड़कों पर रेस्ट्रोरेंट में कोयले के इस्तेमाल पर प्रतिबंध, धूल के कणों को कम करने के लिए पानी के छिड़काव करने के भी निर्देश दिए गए हैं। इसके अलावा उच्चतम न्यायालय ने भी वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीएक्यूएम) से दिल्ली और उसके आसपास वायु प्रदूषण को

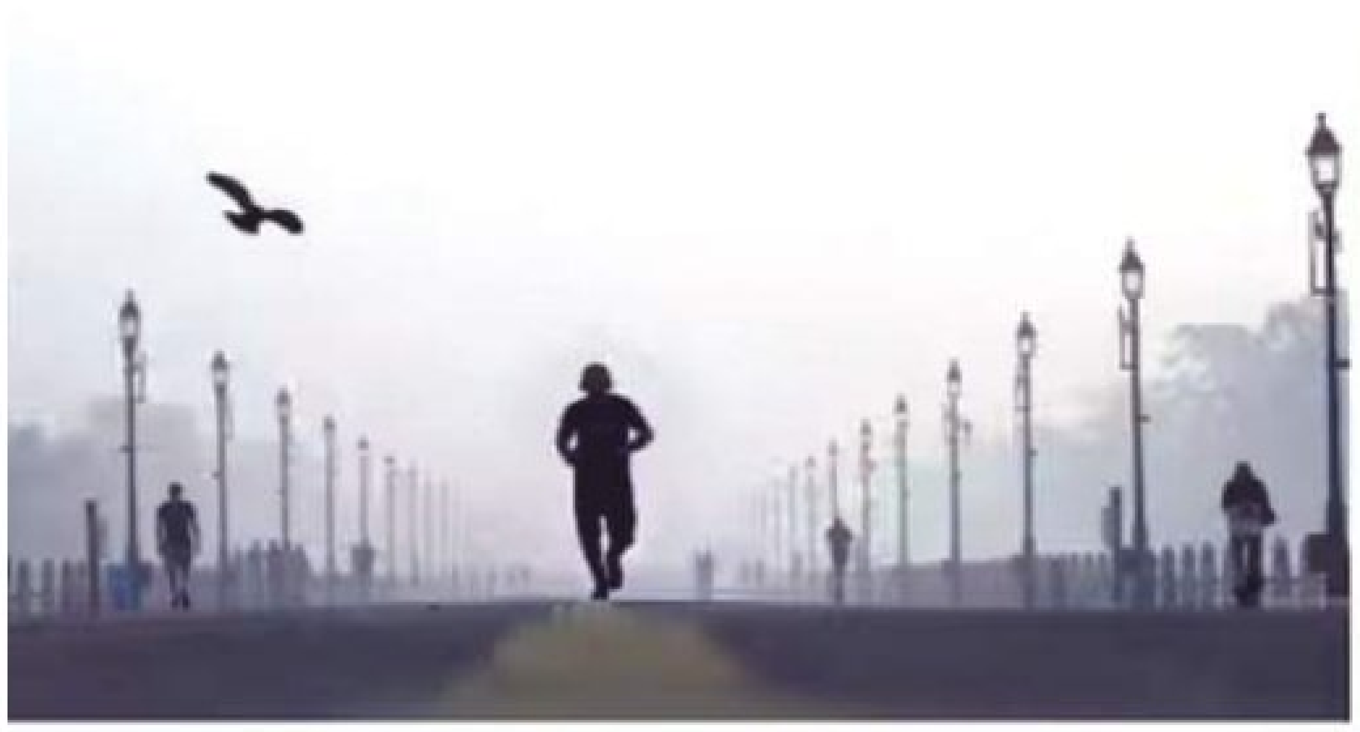

नियंत्रित करने के लिए उठाए जा रहे कदमों पर रिपोर्ट मांगी है। न्यायमूर्ति संजय किशन कौल और न्यायमूर्ति सुधांशु धूलिया की पीठ ने प्रदूषण के मामले में न्याय मित्र की भूमिका निभा रहीं वरिष्ठ अधिवक्ता अपराजिता सिंह की सर्दियों के दौरान वायु प्रदूषण की समस्या और फसल अवशेष जलाने के बारे में दी गई दलीलों का संज्ञान लिया। अगली सुनवाई 31 अक्टूबर को होनी है। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि यह सभी प्रयास अक्टूबर और नवंबर महीने में ही क्यों किए जाते हैं? क्या इस जहरीली हवा से लोगों को निजात दिलाने के लिए स्थायी प्रयास नहीं किए जा सकते? सवाल यह भी है कि क्या सभी प्रयास सरकारों को ही करने होंगे? वास्तविकता यह है कि सुरसा की मुंह की तरह बड़ी होती इस समस्या के स्थायी निवारण के लिए दिल्ली-एनसीआर बोर्ड को स्वायत्त बना कर उसे निर्णय लेने की शक्तियों से संपन्न बनाना होगा। बोर्ड को दीर्घकालीन योजना बनाकर लोगों को इस संकट से मुक्तिदिलानी होगी। लेकिन यह कार्य अकेले एनसीआर बोर्ड नहीं कर सकता। इसके लिए दिल्ली एनसीआर में रहने वाले नागरिकों को अपने कर्तव्य को समझना होगा। उन्हें वह हर काम करना होगा अथवा उसमें सहयोग करना होगा जिससे वायु प्रदूषण को कम किया जा सके और लोग खुली हवा में सांस ले सकें।

2024: जातियों को लेकर उप्र में बिछने लगी सियासी बिसातें

समता पाठक

उत्तरप्रदेश को भाजपा का सबसे मजबूत किला माना जा रहा है। इस प्रदेश में लोकसभा की 80 सीटें हैं। यही वह प्रदेश है जो केन्द्र में सरकार बनाने का रास्ताय तय करता है। पिछले कुछ वर्षों से देखा जा रहा है कि जो भी पार्टी प्रदेश में अच्छा प्रदर्शन कर रही है वही केन्द्र में सरकार बना पा रही है। मोदी जब प्रधानमंत्री बने तो उप्र की भूमिका प्रमुख थी। दूसरी बार भी जब वह पीएम बने तो तब भी उप्र के नतीजे प्रमुख थे। यही कारण है कि उप्र केन्द्र की राजनीति में प्रमुख स्थावन रखता है। 2024 में सबसे अधिक लोकसभा सीटों वाले यूपी में भाजपा (एनडीए) का सीधा मुकाबला सपा से होना है। आगामी लोकसभा चुनाव से पहले सपा अध्यक्ष अखिलेश यादव चाहते हैं कि दलित-पिछड़े और अल्पसंख्यकों की एकजुटता का माहौल बने। इसलिए ही उन्होंने यूपी कि सियासत में दलित-पिछड़े और अल्पसंख्यक का जाल बिछाने की

रणनीति तय की है। सपा अपने अतीत की पारम्परिक जमीनी धरातल को दोहराना चाहती है। पार्टी अध्यक्ष अखिलेश यादव कहते फिर रहे हैं कि दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक उनकी पार्टी की ताकत बनेगा। और ये ताकत उन्हें लोकसभा में सफलता दिलाएगी। समाजवादी पार्टी पीडीए का टैग लगाकर घूम रही है। किंतु सही मायने में तो भारतीय जनता पार्टी बिना कहे दलित-पिछड़े और अल्पसंख्यक को

Scanned with OKEN Scanner

अपने पक्ष में लाने के अमल पर काम कर रही है। खासकर गैर यादव जातियों का विश्वास बरकरार रखने के लिए जबरदस्त ज़मीनी मेहनत पर काम हो रहा है। दलित, पिछड़े और भारी संख्या में गरीब अल्पसंख्यकों को सरकार का फ्री राशन प्रभावित कर रहा है। भाजपा ने जाति प्रधान राजनीति से प्रभावित यूपी-बिहार में पिछड़ी जातियों के नेताओं और उनके छोटे-छोटे दलों से एनडीए का विस्तार करने में सफलता हासिल करना शुरू कर दी है। 2024 के लोकसभा चुनावों से पहले समाजवादी पार्टी में अखिलेश यादव कई महत्वपूर्ण परिवर्तन करते नजर आ रहे हैं। केंद्र और उत्तर प्रदेश सहित भाजपा शासित राज्यों में मंत्रिमंडल विस्तार में दलितों-पिछड़ों की हिस्सेदारी और भी अधिक बढ़ाने की तैयारियों की कवायद चल रही है। पसमांदा यानी पिछड़े मुसलमानों को रिझाने में भी भाजपा कोई कसर नहीं छोड़ रही। उत्तर प्रदेश के घोसी विधानसभा क्षेत्र में दलित, राजभर व यादव सहित अन्य पिछड़ी जातियों और मुसलमानों की बड़ी आबादी है। इस विधानसभा क्षेत्र में चार लाख से अधिक मतदाताओं में दलित समाज के मतदाताओं

की संख्या साठ हजार से अधिक है। लगभग इतनी ही तादाद यहां मुस्लिम समाज की है। राजभर चालीस हजार के आसपास हैं। लेनिया 36,000 और निशाद 16,000 हैं। यादव चालीस हजार से अधिक हैं। किंतु बताया जाता है कि सपा गठबंधन के सबसे मजबूत सहयोगी रालोद अध्यक्ष जयंत चौधरी और अखिलेश यादव के बीच अच्छे रिश्ते नहीं चल रहे हैं। पूर्वांचल में पकड़

रखने वाले सुभासपा अध्यक्ष ओमप्रकाश राजभर पहले ही सपा गठबंधन से नाता तोड़ चुके हैं, अब वो एनडीए की ताकत बन गए हैं। अखिलेश यादव से पिछड़ी जातियों के नेता-कार्यकर्ता ये सवाल ज़रूर कर रहे हैं कि जब उनको उनकी घनी आबादी में सियासी हिस्सेदारी नहीं मिल रही तो फिर सपा पिछड़ों को सामाजिक न्याय कैसे दिलाएंगे? गौरतलब है कि आगामी लोकसभा जैसे बड़े चुनाव की तैयारियां शुरू हो चुकी हैं। एनडीए और इंडिया गठबंधन अपना कुनबा बढ़ाने में लगा है। दोनों ही खेमें दलितों-पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को रिझाने की रणनीतियां ही नहीं तैयार कर रहे बल्कि इस पर अमल करने लगे हैं। कांग्रेस ने इस रणनीति के तहत पहले ही दलित समाज के मल्लिकार्जुन खड़गे को राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाया और दलित समाज के ही बृजलाल खाबरी को उत्तर प्रदेश का अध्यक्ष बनाए बनाया था। आगामी लोकसभा चुनाव से पहले सपा अध्यक्ष अखिलेश यादव चाहते हैं कि दलित-पिछड़े और अल्पसंख्यकों की एकजुटता का माहौल बने। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और हर आम-खास जरुरतों के साथ सत्ता में भी पिछड़ों,दलितों और अल्पसंख्यकों को

Scanned with OKEN Scanner

मराठा आरक्षण- युवाओं को बैसाखी थमाने का उपाय

प्रमोद भार्गव

महाराष्ट्र में मराठा समाज को आरक्षण देने की मांग के चलते कुछ युवकों द्वारा आत्महत्या करने की घटनाओं ने अत्यंत चिंताजनक संदेश दिया है। इस आंदोलन के नए जनक मनोज जरांगे है। उनके छह दिन चले आमरण अनशन के बाद यह आंदोलन उग्र और हिंसक तो हुआ ही, इसने युवाओं में अवसाद भरने का काम भी कर दिया। नतीजतन इसी माह अब तक एक दर्जन से ज्यादा युवा अवसाद की गिरफ्त में आकर आत्महत्या कर चुके हैं। साफ है, महाराष्ट्र में ही नहीं पूरे देश में जाति और समुदायगत आरक्षण का ऐसा महिमामंडन किया जा रहा है कि सरकारी नौकरी नहीं मिली तो जैसे जीवन चल ही नहीं पाएगा? कुंठा और अवसाद की यह मानसिकता बेहद हानिकारक है। क्योंकि आरक्षण उपलब्ध संसाधनों में एक बैसाखी तो हो सकता है, लेकिन समस्या का स्थाई हल नहीं है। अतएव इस समस्या का ऐसा समाधान खोजने की जरू रत है, जो संविधान की कसौटी के अनुरूप तो हो ही, न्यायिक चुनौती का भी सामना कर सके। क्योंकि जब-जब मराठों को आरक्षण देने के उपाय किए गए, ये उच्च और सर्वोच्च न्यायालयों में कानूनी लड़ाई हार गए। पिछड़ा वर्ग आयोग के अस्तित्व में आने के बाद महाराष्ट्र में मराठाओं को आरक्षण देना आसान लगने लगा था, लेकिन संभव नहीं हुआ। हालांकि मराठा समाज की यह मांग 1980 से लंबित है। 2014 में महाराष्ट्र विधानसभा से इस समुदाय को 16 प्रतिशत

आरक्षण देने का प्रावधान पहली बार किया गया था। किंतु मुंबई उच्च न्यायालय ने इस व्यवस्था को गैर संवैधानिक मानते हुए, इसके अमल पर रोक लगा दी थी। इसके बाद आरक्षण की मांग नियमित उठती रही। 2016 में इस आंदोलन के स्वरूप ने आक्रोश का रूप भी ले लिया था। नतीजतन एक युवक ने नहर में कूंदकर आत्महत्या भी कर ली थी। आज फिर यह आंदोलन हिंसा की राह पर है। एनसीपी के विधायक प्रकाश सोलंके और संदीन क्षीरसागर के उग्र भीड़ ने घर फ ूंक दिए। परिवहन निगम की 13 बसों को नश्ट कर दिया। गरम लोहे पर हथौड़ा चलाने के नजरिए से शिवसेना के एकनाथ शिंदे गुट के सांसद हेमंत पाटिल और हेमंत गोडसे ने आरक्षण के समर्थन में त्याग-पत्र दे दिए।

राज्य सरकार ने ओबीसी के तहत मराठाओं को 16 प्रतिशत आरक्षण दिया था। नतीजतन राज्य में कुल आरक्षण 50 फीसदी की सीमा को पार कर गया। सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ ने मई 2021 में मराठा आरक्षण रद्द कर दिया था। इसके बाद मराठा नेताओं ने मांग की कि उनके समुदायों को कुनबी जाति के प्रमाण-पत्र दिए जाएं। इस आंदोलन के हिंसक होने और युवकों द्वारा आत्महत्या करने के बाद सरकार ने आनन-फानन में कैबिनेट उपसमिति की बैठक में न्यायाधीश संदीप शिंदे समिति की रिपोर्ट स्वीकार कर ली। इसके परिणामस्वरूप अब मुख्यमंत्री एकनाथ शिंदे ने कहा है कि कुछ मराठवाड़ा परिवारों को आरक्षण मिलेगा। कुल 1.73 करोड़ अभिलेखों में से कुनबी समुदाय के पक्ष में 11,530 साक्ष्य मिले हैं। जिनके पास कुनबी होने के साक्ष्य होंगे, उन्हें तत्काल आरक्षण प्रमाण-पत्र जारी कर दिए जाएंगे। लेकिन अनशन पर बैठे मनोज जरांगे ने आंशिक आरक्षण स्वीकार करने से इंकार कर दिया है। साफ है, आरक्षण का पेंच इस निर्णय के बाद भी सुलझा नहीं है।

इस आरक्षण को देने के लिए पिछड़ा वर्ग आयोग ने मराठा समुदाय की सभी जातियों और उपजातियों से विचार विमर्श किया। समाज के 98 फीसदी लोगों से राय ली गईं। कुनबी और ओबीसी के दायरे में आने वाली 90 फीसदी जातियों ने मराठों को आरक्षण देने का समर्थन किया। इसके लिए 43,600 से भी ज्यादा परिवारों का सर्वेक्षण किया गया। इससे पता चला कि मराठा समुदायों के 37 प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने को विवश हैं। 70 प्रतिशत परिवार कच्चे मकानों में रहते हैं और 63 प्रतिशत परिवार लघु कृषक हैं। 53 प्रतिशत परिवारों के पास फिज्र, वाशिंग मशीन और कंप्यूटर नहीं हैं, वहीं 43 प्रतिशत परिवार के पास टीवी नहीं हैं। 22 फीसदी परिवारों की वार्षिक आय 24000 से भी कम हैं। 51 प्रतिशत परिवारों की सालाना आमदनी 24 से 50 हजार के बीच है। 19 फीसदी परिवारों की आमदनी 50 हजार से 1 लाख के बीच हैं। आठ फीसदी परिवारों की आय 1 लाख से 4 लाख रूपए वार्षिक और महज 0.5 फीसदी परिवारों की आमदनी सालाना 4 लाख रूपए से अधिक हैं। महाराष्ट्र में मराठा, उत्तर भारत के क्षत्रियों की तरह उच्च सवर्ण और सक्षम भाषाई समूह है। आजादी से पहले शासक और फिर सेना में इस कौम का मजबूत दखल रहा है। आजादी की लड़ाई में मराठा, पेशवा, होल्कर और गायकवाड़ों की अहम भूमिका रही है। स्वतंत्र भारत में यह जुझारू कौम आर्थिक व समाजिक क्षेत्र में इतनी क्यों पिछड़ गई कि इसे आरक्षण के बहाने संरक्षण की जरूरत पड़ गई, यह राजनेताओं

राज्य सरकार ने ओबीसी के तहत मराठाओं को 16 प्रतिशत आरक्षण दिया था। नतीजतन राज्य में कुल आरक्षण 50 फीसदी की सीमा को पार कर गया। सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ ने मई 2021 में मराठा आरक्षण रद्द कर दिया था। इसके बाद मराठा नेताओं ने मांग की कि उनके समुदायों को कुनबी जाति के प्रमाण-पत्र दिए जाएं।

Scanned with OKEN Scanner

और समाज विज्ञानियों के लिए चिंता का विशय होना चाहिए? हमारा संविधान भले ही जाति, धर्म, भाषा और लिंग के आधार पर वर्गभेद नहीं करता, लेकिन आज इन्हीं सनातन मूल्यों को आरक्षण का आधार बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। आजादी के बाद जब संविधान अस्तित्व में आया तो, अनुसूचित जाति और जनजातियों के सामाजिक उत्थान के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की सुविधा दी गई थी। 1989 में तत्कालीन प्रधानमंत्री वीपी सिंह ने अपनी कुर्सी बचाने के लिए ओबीसी आरक्षण का प्रावधान किया था। आजादी के 75 साल बाद भी ये जातियां समग्र रूप में न तो अपने बुनियादी उद्देश्य में सफल हुईं और न ही व्यापक सामाजिक हित साधने में कामयाब रहीं। इसके उलट एक ही वर्ग में आर्थिक और सामाजिक विसंगति बढ़ गई, जो ईर्ष्या और विद्वेश का कारण बन रहे हैं। नतीजतन आरक्षण के ये प्रावधान न तो समाज के लिए लाभदायी रहे और न ही देश के लिए? आरक्षण व्यवस्था के परिणामों से रूबरू होने के बावजूद देश के राजनेता वोट की राजनीति के लिए संकीर्ण लक्ष्यों की पूर्ति में लगे हैं और जातीय आरक्षण की इस प्रक्रिया को लगातार बनाए रखने की कवायद कर रहे हैं। जबकि समय की मांग है कि इसकी पुनर्समीक्षा हो और इसे आर्थिक आधार देकर वास्तविक जरूरतमंदों को लाभ दिया जाना बेहतर होगा।

एक समय आरक्षण का सामाजिक न्याय से वास्ता जरूर था, लेकिन सभी जाति व वर्गों के लोगों द्वारा शिक्षा हासिल कर लेने के बाद जिस तरह से देश में शिक्षित बेरोजगारों की फौज खड़ी हो गई है, उसका कारगर उपाय आरक्षण जैसे चुक गए औजार से संभव नहीं है? लिहाजा सत्तारूढ़ दल अब सामाजिक न्याय से जुड़े सवालों के समाधान आरक्षण के हथियार से खोजने की बजाय रोजगार के नए अवसरों का सृजन कर निकालेंगे तो बेहतर होगा? यदि

एक समय आरक्षण का सामाजिक न्याय से वास्ता जरूर था, लेकिन सभी जाति व वर्गों के लोगों द्वारा शिक्षा हासिल कर लेने के बाद जिस तरह से देश में शिक्षित बेरोजगारों की फौज खड़ी हो गई है, उसका कारगर उपाय आरक्षण जैसे चुक गए औजार से संभव नहीं है?

वोट की राजनीति से परे अब तक दिए गए आरक्षण के लाभ का ईमानदारी से मूल्यांकन किया जाए तो साबित हो जाएगा कि यह लाभ जिन जातियों को मिला है, उनका समग्र तो क्या आंशिक कायाकल्प भी नहीं हो पाया ? भूमंडलीकरण के दौर में खाद्य सामग्री की उपलब्धता से लेकर शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास संबंधी जितने भी ठोस मानवीय सरोकार हैं, उन्हें हासिल करना इसलिए और कठिन हो गया है, क्योंकि अब इन्हें केवल पूंजी और अंग्रेजी शिक्षा से ही हासिल किया जा सकता है? ऐसे में आरक्षण लाभ के जो वास्तविक हकदार हैं, वे अर्थाभाव में जरूरी योग्यता और अंग्रेजी ज्ञान हासिल न कर पाने के कारण हाशिये पर उपेक्षित पड़े हैं। अलबत्ता आरक्षण का सारा लाभ वे लोग बटोरे लिए जा रहे हैं, जो पहले ही आरक्षण का लाभ उठाकर आर्थिक व शैक्षिक हैसियत हासिल कर चुके हैं। कालांतर में आरक्षण मिलने के बाद मराठा जातियां भी यही एकांगी स्वरूप ग्रहण कर लेंगी। लिहाजा आदिवासी, दलित व पिछड़ी जातियों में जो भी जरूरतमंद हैं, यदि उन्हें लाभ देना है तो क्रीमीलेयर को रेखांकित करके इन्हें आरक्षण के लाभ से वंचित करना होगा? लिहाजा इस परिप्रेक्ष्य में सोचना होगा कि आरक्षण बैसाखी है, पैर नहीं? याद रहे यदि विकलांगता ठीक होने लगती है तो चिकित्सक बैसाखी का उपयोग बंद करने की सलाह देते हैं और बैसाखी का उपयोगकर्ता भी यही चाहता है। किंतु राजनीतिक महत्वाकांक्षा है कि आरक्षण की बैसाखी से मुक्ति नहीं चाहती? इसलिए आरक्षण भारतीय समाज में उत्तरोत्तर मजबूत हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

अमीरी बनाम गरीबी

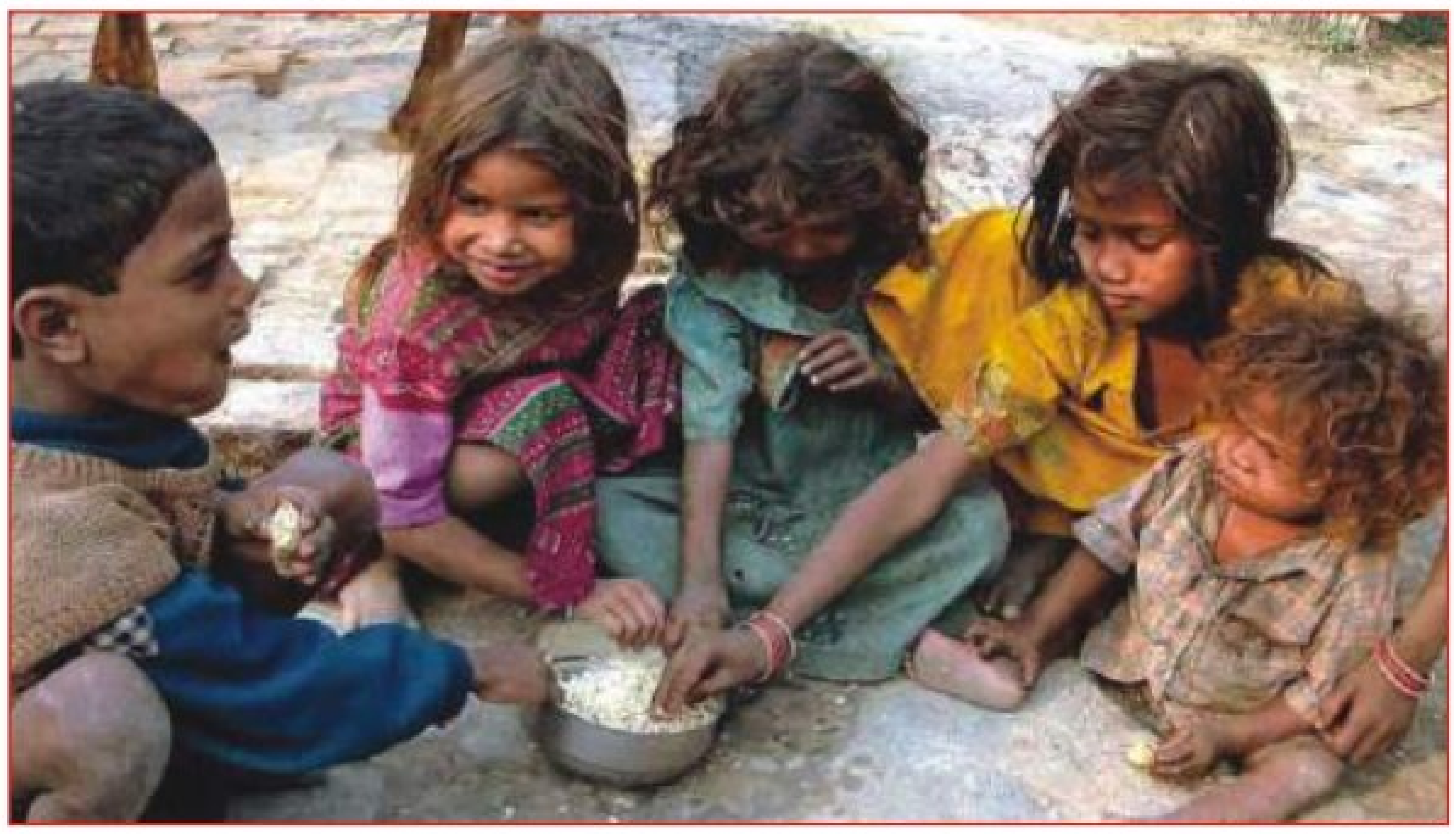

शैलेन्द्र चौहान

जनगणना के आंकडों के मुताबिक ग्रामीण इलाकों के तीन चौथाई परिवारों की आमदनी पांच हजार रुपए महीने से ज्यादा नहीं है। गांवों में रहने वाले बानबे फीसद परिवारों की आय प्रतिमाह दस हजार रुपए से कम है। शहरी इलाकों के आंकड़े फिलहाल जारी नहीं किए गए हैं। पर वे जब भी सामने आएंगे, देश की कुल तस्वीर लगभग ऐसी ही उभरेगी इसलिए कि देश की तिहत्तर फीसद आबादी का सच सामने आ चुका है। दूसरे, शहरों में भी, एक छोटा वर्ग भले संपन्नता के टापू पर रहता हो, गरीबी का दायरा बहुत बड़ा है। सामाजिक-आर्थिक जनगणना के आंकड़े यह भी बताते हैं कि गांवों में रहने वाले इक्वावन फीसद परिवार अस्थायी, हाड़-तोड़ मजदूरी के सहारे जीते हैं। करीब तीस फीसद परिवार भूमिहीन मजदूर हैं। सवा तेरह फीसद परिवार एक कमरे के कच्चे मकान में रहते हैं। जबकि देश के निन्यानबे प्रतिशत नेता करोड़पति हैं। 2014 में लोकसभा के लिए हुये आम चुनावों में नामांकन भरने की प्रक्रिया के दौरान नेताओं ने अपनी संपत्ति का जो ब्यौरा दिया उससे तो कम से कम यही लगता है। निवार्चन आयोग के समक्ष दिए हलफनामे में कई शीर्ष नेताओं की संपत्ति का विवरण गरीब देशवासियों को चौंकानेवाला नहीं है। देश के पूंजीपति व्यवसायी और उद्योगपतियों के पास अरबों खरबों की संपत्ति है। कुछ की गिनती दुनिया के सर्वाधिक अमीरों में होती है। आज हमारे देश में विदेशी कंपनियां आधिकारिक रूप से 2,32,000 करोड़ का शुद्ध मुनाफा कमा रही हैं। बाकी सभी तरह का फर्जी हिसाब, उनका आयातित कच्चे माल का भुगतान, चोरी आदि को जोड़ा जाय तो यह रकम 25,00,000 करोड़

सलाना बैठती है। यहां दवाओं का सालाना कारोबार 10,00,000 करोड़ का है। सालाना 6,00,000 करोड़ का जहर का व्यापार विदेशी कंपनियां कर रही है। देश में 10,000 लाख करोड़ का खनिज पाया जाता है और इसका दोहन भी विदेशी कंपनियां बहुत ही सस्ते भाव पर कर रही हैं। वहीं आजादी के बाद 400 लाख करोड़ रुपया विदेशी बैंकों में जमा होता है। धर्म के नाम पर मन्दिरों में चढ़ने वाला चढ़ावा भारत के योजना व्यय के बराबर है। अकेले 10 धनी मन्दिरों की सम्पत्ति देश के मध्यम वर्ग के 500 उद्योगपत्तियों से ज्यादा हैं। आज़ादी के बाद पहले प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने उद्योगों को आधुनिक मन्दिर कहा था लेकिन आज छह दशक बीतने के बाद लगता है कि मन्दिर आधुनिक उद्योग बन चुके हैं। केवल सोने की बात की जाये तो 100 प्रमुख मन्दिरों के पास करीब 3600 अरब रुपये का सोना पड़ा है। शायद इतना सोना रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया के पास भी न हो। मन्दिरों के इस फलते-फूलते व्यापार पर मन्दी का भी कोई असर नहीं पड़ता है! उल्टा आज जब भारतीय अर्थव्यस्था संकट के दलदल में फँसती जा रही है तो मन्दिरों के सालाना चढ़ावे की रकम लगातार बढ़ती जा रही है। ज़ाहिरा तौर पर इसके पीछे मीडिया और प्रचार तन्त्र का भी योगदान है जो दूर-दराज़ तक से श्रद्धालुओं को खींच लाने के लिए विशेष यात्रा पैकेज देते रहते हैं। जहाँ देश की 80 फीसदी जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पानी जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी मयस्सर नहीं हैं वहीं मन्दिरों के ट्रस्ट और बाबाओं की कम्पनियाँ अकूत सम्पत्ति पर कुण्डली मारे बैठी हैं। सिर्फ कुछ प्रमुख मन्दिरों की कमाई देखें तो इस ग़रीब देश के अमीर भगवानों की लीला का खुलासा हो जायेगा। तिरुपति बालाजी भारत के अमीर

मन्दिरों की लिस्ट में नम्बर एक पर है। इस मन्दिर का ख़ज़ाना पुराने ज़माने के राजा-महराजाओं को भी मात देने वाला है क्योंकि बालाजी के ख़ज़ाने में आवंटन तो सिर्फ आभूषण हैं। अलग-अलग बैंकों में मन्दिर का 300 किलो सोना जमा है और मन्दिर के पास 1000 करोड़ रुपये के फिक्स्ड डिपोज़िट हैं। एक अनुमान के मुताबिक़ तिरुपति बालाजी मन्दिर में हर दिन लगभग 70 हज़ार श्रद्धालु आते हैं जिस कारण हर महीने मन्दिर को सिर्फ चढ़ावे से ही नौ करोड़ रुपये से भी ज्यादा की आमदनी होती है और इसकी सालाना आय क़रीब 650 करोड़ है। इसलिए बालाजी दुनिया के सबसे दौलतमन्द भगवान कहे जाते हैं। जनता के दुख-दर्द दूर कराने वाले भगवान बालाजी की सम्पत्ति की रक्षा के लिए 52 हजार करोड़ रुपये का बीमा कराया गया है। इसके अलावा बालाजी के विशेष भक्तों की भी कमी नहीं हैं जो समय-समय पर बालाजी को मूल्यवान चढ़ावे अर्पण करते रहते हैं। इन्हीं भक्तों की सूची में ग़ैरक़ानूनी खनन के सबसे बड़े सरगना रेड्डी बन्धु भी हैं जिन्होंने खनन कारोबार के 4000 करोड़ रुपये के मुनाफे में से 45 करोड़ रुपये का हीरों से जड़ा मुकुट चढ़ाया ताकि उनके काले धन्धों पर भगवान की कृपा बनी रहे। तिरुपति बालाजी के बाद देश में सबसे ज्यादा लोग वैष्णो देवी के मन्दिर में आते हैं। 500 करोड़ रुपये की सालाना आय के साथ वैष्णो देवी मन्दिर भी देश के अमीर मन्दिरों में शामिल है। मन्दिर के सीईओ आर.??. गोयल के अनुसार हर गुज़रते दिन के साथ मन्दिर की आय बढ़ती जा रही है। शिरडी स्थित साईं बाबा का मन्दिर महाराष्ट्र के सबसे अमीर मन्दिरों में से एक है। सरकारी जानकारी के मुताबिक़ इस प्रसिद्ध मन्दिर के पास 32 करोड़ रुपये के आभूषण हैं और ट्रस्ट के पास 450 करोड़ रुपये की सम्पत्ति है। पिछले कुछ साल में साईं बाबा की बढ़ती लोकप्रियता के कारण इसकी दैनिक आय 60 लाख रुपये से ऊपर है और सालाना आय 210 करोड़ रुपये को पार कर चुकी है। पिछले साल तिरुवनन्तपुरम के पद्मनाथ मन्दिर के गर्भगृहों से मिली बेशुमार दौलत के बाद यह बालाजी मन्दिर को पीछे छोड़ते हुए देश का सबसे अमीर मन्दिर बन गया है। गुप्त गर्भगृहों में मिला ख़ज़ाना खरबों रुपये का है जिसमें सिर्फ सोने की मूर्तियों, हीरे-जवाहरत, आभूषण और सोने-चाँदी के सिक्कों का मूल्य ही पाँच लाख करोड़ रुपये है। अभी तक मन्दिर के दूसरे तहखाने खुलने बाकी हैं जिनसे अभी और बेशुमार दौलत निकल सकती है। मन्दिरों में आने वाले चढ़ावों से लेकर मन्दिरों के ट्रस्टों और महन्तों की सम्पत्ति स्पष्ट कर देती है कि ये मन्दिर भारी मुनाफा कमाने वाले किसी उद्योग से कम नहीं हैं। यहां बाबाओं का बोलबाला है, वे किसी माफिया से कम नहीं हैं। जिस देश में धर्म-कर्म, नियति और पाखंड की सत्ता हो, जहां के राजनेताओं को बस अपनी ही चिंता रहती हो, वे अरबों-खरबों के घोटालों में लिप्त हों उस देश का यह हाल सुनिश्चित है। नारों और भ्रम की राजनीति की यही वास्तविकता है।

Scanned with OKEN Scanner

पंचायत से पार्लियामेंट तक के चुनाव एक साथ हों

रघु ठाकुर

भारत सरकार की ओर से एक देश एक चुनाव की चर्चा शुरू हुई थी और इसके लिये बड़ी तत्परता के साथ भारत सरकार ने एक कमेटी का भी गठन किया था जिसके अध्यक्ष रामनाथ कोविन्द पूर्व राष्ट्रपति जी हैं। तथा अन्य कई मंत्री और गणमान्य लोग इसके सदस्य बनाये गये थे। इस समिति की रपट अखबारों में 26 अक्टूबर 23 को प्रकाशित हुई है। मुझे खुशी है कि इस रपट में उन मुद्दों को शामिल किया गया है जिन्हें मैं पहले भी उठाता रहा हूँ। इसीलिये स्पष्ट कर दूँ कि मैं और मेरी लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी देश के सभी चुनाव पंचायत से लेकर संसद तक जिसमें जनपद, नगर निगम, नगर पालिका, मंडी कमेटी आदि सभी शामिल हैं एक साथ कराये जाने के पक्ष में शुरू से हैं। और चुनाव सुधारों को लेकर मैं लगातार 1982-83 से अपने स्तर और अपनी क्षमता भर सक्रिय रहा हूँ। इस विषय को लेकर मैंने बहुत सारे धरने किये हैं, कई बार लेख लिखे हैं और दिल्ली में भी कई बार विचार गोष्ठियां आयोजित की हैं। जिनमें पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर भाजपा के पूर्व अध्यक्ष स्व. कुशाभाउ ठाकरे, राम बहादुर राय और अनेकों सांसद, पूर्व मंत्री, पत्रकार, बुद्धिजीवी शामिल होते रहे हैं। यहाँ तक की जब 1998 में लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी का गठन हुआ तब भी पार्टी के मूल कार्यक्रम और घोषणा पत्र में उसे शामिल किया था। मैं किसी गर्वोक्तिके लिये यह नहीं लिख रहा हूँ बल्कि सार्वजनिक स्मृति की याद के लिये लिख रहा हूँ। अभी कुछ दिन पूर्व राष्ट्रीय सहारा अखबार में हस्तक्षेप में इस विषय पर मेरा आलेख भी छपा था। जैसी कि

देश के सभी चुनाव पंचायत से लेकर संसद तक जिसमें जनपद, नगर निगम, नगर पालिका, मंडी कमेटी आदि सभी शामिल हैं एक साथ कराये जाने के पक्ष में शुरू से हैं। और चुनाव सुधारों को लेकर मैं लगातार 1982-83 से अपने स्तर और अपनी क्षमता भर सक्रिय रहा हूँ।

आजकल राजनैतिक परंपरा है कि सरकार की हर बात का विरोध किया जाये, इस परंपरा का निर्वहन देश के प्रतिपक्ष ने बखूबी किया है। प्रतिपक्ष की ओर से कुछ दलों द्वारा बनाये गये एक नये गठबंधन, जिसका संक्षिप्त नाम इंडिया (I.N.D.I.A) रखा गया है उनके द्वारा भी इसका विरोध निम्न आधारों पर किया गया:-

- एक देश एक चुनाव संघीय ढाँचे के खिलाफ है।
- पूर्व राष्ट्रपति को इस कमेटी का अध्यक्ष बनाकर उनका अपमान किया गया है।
- इंडिया गठबंधन के एक महत्वपूर्ण सदस्य दिल्ली के मुख्यमंत्री ने कहा है कि

वन नेशन वन-इलेक्शन के बजाय वन नेशन वन एजुकेशन, वन नेशन वन हेल्थ एजुकेशन होना चाहिये।

▶▶ प्रतिपक्ष गठबंधन समर्थक कुछ बुद्धिजीवी पत्रकारों ने इस आशय के लेख लिखे हैं कि एक चुनाव के होने से कुछ विशेष खर्च नहीं बचेगा और न ही प्रशासन पर कोई असर पड़ेगा। एक मित्र ने तो यह भी लिखा है कि डॉ. लोहिया कहते थे कि जिंदा कौमें पांच साल इंतजार नहीं करती और इसलिये पांच वर्ष में एक चुनाव लोहिया के विचार के खिलाफ है।

पंचायत से संसद तक एक साथ चुनाव होने से देश के संघीय ढांचे पर कोई प्रतिकूल असर होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। निसंदेह एक पूर्व राष्ट्रपति को किसी कमेटी का अध्यक्ष बनाना यह सामान्य परंपरा नहीं है।

में बैंकों के राष्ट्रीयकरण आदि सवालों को उठाती रही तथा सोशलिस्ट पार्टी बनने के बाद इन मुद्दों को लेकर पार्टी द्वारा आंदोलन भी किये गये, जेलें भरी गई, गिरफ्तारियां दी गई, परन्तु 1970 में अपनी पार्टी के अंदर लड़ने के लिये इंदिरा गाँधी ने प्रेस के मुद्दे का हल और बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा कर दी तथा इसके फलस्वरूप 1971 के चुनाव में विशाल बहुमत हासिल कर लिया। कहने का तात्पर्य यही है कि सरकारें अपने चुनावी लाभ के लिये अच्छे मुद्दों को स्वतः विलंबित रखती है और जरूरत पड़ने पर

मैं मानता हूँ कि भारत सरकार इस मुद्दे को अचानक कोई राष्ट्रहित की भावना से लेकर नहीं आई है। बल्कि अपने राजनैतिक लाभ और आगामी चुनाव का मुद्दा बनाने के लिए लाई गई है। बिना शक भाजपा व केन्द्र सरकार की यही नीयत है। परन्तु अपने स्वार्थ की नीयत से अपने चुनाव के लाभ के लिये सरकारें पहले भी ऐसे कदम उठाती रही हैं।

1946 में डॉ. लोहिया ने गोवा की आजादी का आंदोलन शुरू किया था और 1947 में देश आजाद हुआ। आजाद देश के प्रधानमंत्री स्व. नेहरू बने तथा उन्होंने 14 वर्ष तक गोवा के मुद्दे पर चुप्पी रखी और एक प्रकार से गोवा मुक्ति आन्दोलन का समर्थन न करके विरोध जैसा ही कार्य किया। परन्तु जब 1962 के चुनाव के समय उन्हें तिब्बत और चीनी हमले का मुद्दा गहराता दिखने लगा तो उन्होंने चुनाव के कुछ समय पूर्व मुम्बई में गोवा को मुक्त कराने और सेना तथा पुलिस को भेजने की घोषणा कर दी।

1930 के दशक से ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी प्रेस की आजादी और बाद उन्हें बाहर ले आती है। ये बुरी नियत से उठाये गये अच्छे कदम कहे जा सकते हैं। इसी परंपरा का अनुपालन श्री नरेन्द्र मोदी जी कर रहे हैं।

अब पहले हम इन आरोपों पर विचार करें जो प्रतिपक्ष द्वारा लगाये जा रहे हैं। पंचायत से संसद तक एक साथ चुनाव होने से देश के संघीय ढांचे पर कोई प्रतिकूल असर होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। निसंदेह एक पूर्व राष्ट्रपति को किसी कमेटी का अध्यक्ष बनाना यह सामान्य परंपरा नहीं है। हो सकता है, भारत सरकार के नियंत्रकों ने

Scanned with OKEN Scanner

सोचा हो कि उन्हें इससे दो फायदे हैं, एक कमेटी की गंभीरता और उसका वजन बढ़ेगा, दूसरा राष्ट्रपति जी अनुसूचित जाति से आते हैं अतः प्रतिपक्ष द्वारा सीधा और तीखा हमला नहीं हो सकेगा, और अगर होगा तो भाजपा उसे जातिवाद की तरफमोड़ सकेगी। शायद यही वजह है कि जिस प्रतिपक्ष ने श्री रामनाथ कोविंद को राष्ट्रपति पद के लिये नहीं चुना था वही प्रतिपक्ष उनके सम्मान के लिये चिंतित हो उठा है। यह परंपरा के विपरीत तो है परन्तु संविधान के विपरीत नहीं है। ऐसे गैर परंपरा और गैर संवैधानिक कामों के अन्य उदाहरण प्रतिपक्ष की सरकारों के भी दिये जा सकते है। जहाँ तक एक देश में एक शिक्षा और एक देश में एक चिकित्सा का प्रश्न है तो यह लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी के द्वारा अनेक दशकों से उठाये जा रहे मुद्दे है। यह नारा तो डॉ. लोहिया ने 1960 के दशक से लगाना शुरू किया था कि राष्ट्रपति हो या चपरासी की संतान सबकी शिक्षा एक समान चिकित्सा और संपूर्ण सरकारी चिकित्सा की माँग भी लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी करती रही है तथा उसको लेकर भी पार्टी लगातार सक्रिय और संघर्षरत रही हैं परन्तु क्या प्रतिपक्षी गठबंधन में शामिल दलों ने उसे अपने कार्यक्रम में शामिल किया है?

दिल्ली के एक अल्पसंख्यक भाई ने सोशल मीडिया पर टिप्पणी लिखी है कि मुख्यमंत्री जी समान शिक्षा, समान चिकित्सा की बात उठाने से पहले अपनी सरकारों में यह कानून बनाये और अपने दल के सांसदों, विधायकों, मंत्रियों के बच्चों को केवल सरकारी शिक्षण संस्थानों में शिक्षा और सरकारी अस्पतालों में ईलाज की अनिवार्यता लागू करें। तब शायद उनकी बात का कोई असर होगा। वरना देश इसे नकली विरोध और पाखण्ड मानेगा। उनकी बात सही है।

डॉ. लोहिया का प्रसिद्ध वाक्य है कि, जिंदा कौमें पांच साल इंतजार नहीं करती इस वाक्य का अर्थ है कि एक चुनाव के बाद अगले चुनाव तक जनता को और राजनैतिक दलों को चुप नहीं बैठना चाहिये। बल्कि आन्दोलन कर सड़कों को गरमाना चाहिये। इसलिये वे कहते थे कि, अगर सड़कें सूनी होगी तो संसद आवारा हो जायेगी परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि देश में एक के बाद एक चुनाव चलते रहना चाहिये और इसका यह अर्थ निकालना भी गलत है यदि आन्दोलन के चलते कोई सरकारें गिरे और उसके कारण चुनाव हो, जैसे 1973 में गुजरात में चुनाव हुये थे तो वह लोहिया की कल्पना के अनुकूल हो सकता है।

1968 तक लगभग संसद विधानसभा के चुनाव एक साथ ही होते थे। यह तो 1971 में श्रीमती इंदिरा गाँधी की सरकार ने अपने चुनाव में लाभ के लिये एक वर्ष पूर्व ही मध्याविधि चुनाव कराये, उससे यह परिपाटी बिगड़ी। इसी प्रकार आपातकाल में संसद की अवधि वृद्धि किये जाने पर यह परिपाटी और बिगड़ी। इंडिया गठनबंधन समर्थक बुद्धिजीवियों से मेरा अनुरोध है कि

1968 तक लगभग संसद विधानसभा के चुनाव एक साथ ही होते थे। यह तो 1971 में श्रीमती इंदिरा गाँधी की सरकार ने अपने चुनाव में लाभ के लिये एक वर्ष पूर्व ही मध्याविधि चुनाव कराये, उससे यह परिपाटी बिगड़ी। इसी प्रकार आपातकाल में संसद की अवधि वृद्धि किये जाने पर यह परिपाटी और बिगड़ी।

वह अपने छोटे राजनैतिक लाभ के लिये डॉ. लोहिया को गलत ढंग से पेश न करें।

2019 के लोकसभा के चुनाव प्रक्रिया में अनुमानित कुल 60 हज़ार करोड़ रूपया खर्च हुआ था और उसके पहले 2018 में हुये कुछ राज्यों की विधानसभा चुनाव में भी इसी प्रकार कई हज़ार करोड़ रूपये खर्च हुये थे। यह निर्विवाद सत्य है कि, पंचायत से संसद तक के चुनाव एक साथ हों तो एक ही खर्च में सारे चुनाव हो जायेंगे। इसके अलावा बार-बार आचार संहिता लगाने से प्रशासनिक कामों में अवरोध और सरकारी

Scanned with OKEN Scanner

कर्मचारियों की अनावश्यक समय की बरबादी भी रूक जायेगी। चुनाव खर्च भी इससे कम होंगे। क्योंकि पंचायत से लेकर जनपद, जिला, नगर पालिका, नगर निगम, मण्डी और फिर विधानसभा और संसद के चुनाव साथ हो तो न केवल सरकारी और गैर सरकारी खर्च कम होगा बल्कि मतदान का प्रतिशत भी अपने आप बहुत बढ़ जायेगा। अभी मतदान के प्रचार के नाम पर जो करोड़ों रूपया खर्च होता है और फिर भी औसतन 60-65 प्रतिशत से ज्यादा मतदान नहीं हो पाता। वह अपने आप बढ़कर 80-90 प्रतिशत तक पहुंच जायेगा।

मेरी राय में अच्छा होगा कि केन्द्र सरकार कमेटी की रपट आने के बाद देश में चर्चा कराये और तदानुसार प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर संसद में प्रस्ताव लाये। परन्तु सरकार की नियत भी समिति की रपट को सीधे संसद में ले जाने की या केवल विषय छोड़कर चुप रह जाने की लगती है। और वह जन बहस से बचना चाहती है। क्योंकि उसका तो उद्देश्य एक चुनावी लाभ है। मेरी राय में उसे एक देश, एक चुनाव के साथ-साथ सम्पूर्ण चुनाव सुधार पर विचार करना चाहिये, जो सही अर्थ में राष्ट्रहित में होगा।

यानि एक साथ चुनाव कराने के साथ-साथ सरकार को निम्न कदम और भी उठाना चाहिये। जिससे देश की बहु प्रतिक्षित चुनाव सुधार की मांग पूरी हो सकें:-

मेरी राय में अच्छा होगा कि केन्द्र सरकार कमेटी की रपट आने के बाद देश में चर्चा कराये और तदानुसार प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर संसद में प्रस्ताव लाये। परन्तु सरकार की नियत भी समिति की रपट को सीधे संसद में ले जाने की या केवल विषय छोड़कर चुप रह जाने की लगती है।

▶▶एक व्यक्ति को केवल एक ही चुनाव क्षेत्र से लड़ने की अनुमति हो तथा उस पद पर निर्वाचन होने के बाद 5 साल तक उसे किसी दूसरे निर्वाचित पद पर लड़ने की अनुमति नहीं हो। चुनाव अभियान की जिम्मेदारी चुनाव आयोग पूरी करें। यानि घोषणा पत्र, प्रत्याशी परिचय, संयुक्तसभाओं की व्यवस्था चुनाव आयोग करें। और लोकसभा तथा विधानसभा के अन्य प्रत्याशियों की तार्किक आवश्यकताओं की पूर्ति चुनाव आयोग करें।

▶▶मतदाताओं को और विशेषतः वरिष्ठ नागरिकों, बीमारों और कर्मचारियों को ऑनलाईन मतदान की सुविधा हो।

▶▶ऑनलाईन मतदान की पुष्टि चुनाव आयोग का तंत्र मतदाता को करें। तथा कोई त्रुटि या दबाव होने पर मतदाता को इसमें बदलाव करने का विकल्प मिले।

▶▶मतदान करने की पुष्टि की रसीद मतदाता को दी जाना चाहिये।

▶▶नोटा के नियम में यह भी प्रावधान हो कि अगर नोटा को सर्वाधिक मत मिलते हैं तो उस चुनाव क्षेत्र के चुनाव को रद्द कर अविलंब वैकल्पिक प्रत्याशियों के बीच पुनः चुनाव हों।

▶▶ऑनलाईन मतदान करने से प्रत्याशियों की संख्या, मत पत्र छापने की आवश्यकता भी कम हो जायेगी तथा चुनाव का प्रशासनिक व्यय भी कम हो जायेगा।

▶▶प्रत्याशी शुल्क भी कम किया जाये। लोकसभा के लिये अधिकतम 5 हजार और विधानसभा के लिये अधिकतम 2 हजार रखा जाये।

▶▶कानून में सुधार कर चुनाव सबंधित एक अलग ट्रिब्यूनल बनें जो हर हाल में, कम समय में अर्थात् अधिकतम 06 माह में याचिका का अंतिम निर्णय करें।

▶▶चुनावी न्यास और चुनावी बांड के कानून को समाप्त किया जाये। ताकि यह काले धन का खेल खत्म हो।

▶▶अगर किसी पार्टी के निर्वाचित प्रतिनिधि की मृत्यु निर्वाचित होने के तीन वर्ष के बाद बीच अवधि में हो जाती है तो उस पार्टी के द्वारा उसके प्रतिनिधि को नामजद किया जा सकता है या फिर उस सीट को बराबर अवधि के लिये खाली रखा जा सकता है। अगर नामजदगी की व्यवस्था हो तो उस नामजद व्यक्तिको केवल वेतन तो मिले पर पेंशन न मिले।

▶▶पूर्व विधायकों/ सांसदों की पेंशन को समाप्त किया जाये।

Scanned with OKEN Scanner

इजरायली डोम अर्थात रामायण कालीन ब्रह्म-छत्र

प्रमोद भार्गव

आजकल इजरायल और फिलिस्तीन समर्थक आतंकवादी संगठन हमास के बीच युद्ध चल रहा है। आतंकी पैराग्लाइडिंग पर सवार होकर इजरायल की सीमा में घुसे और हजारों मिसाइलों से हमला बोल दिया था। मिसाइलों के हवाई हमले से बचने के लिए इजरायल ने आयरन डोम अर्थात इस्पाती छत्र विकसित किया हुआ है। लेकिन इस बार यह डोम हमास की मिसाइलों को आसमान में ही ध्वस्त करने में असफ ल रहा। दरअसल इसके सॉफ्टवेयर को अपडेट किए जाते रहे, लेकिन हार्डवेयर अद्यतन नहीं किया गया। नतीजतन आयरन डोम नाम की यह हवाई सुरक्षा प्रणाली अपना लक्ष्य नहीं साध पाई। इसके नाकाम रहने का एक कारण यह भी रहा कि आतंकियों ने एक साथ पांच हजार मिसाइलें दाग दी थीं। जबकि इसकी क्षमता दो हजार मिसाइलों को आसमान में ही नष्ट करने की है। इसका उद्देश्य हवाई हमलों को हवा में ही रोकना है। इस डोम को दुनिया का सबसे भरोसेमंद हवाई हथियार माना जाता है। जबकि दो साल पहले 2021 में 11 दिन तक चले खूनी संघर्ष में इस डोम ने हवा में दुश्मन की मिसाइलों को मार गिराने का करिश्मा दिखाया था। इस हमले में इजराइल पर 40 घंटों में रॉकेट से 1050 प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल) दागी गईं थीं, इनमें 850 से ज्यादा प्रक्षेपास्त्रों को इजरायल की पुख्ता सुरक्षा प्रणाली इस्पाती-छत्र ने हवा में ही नष्ट कर दिया था। कुछ प्रक्षेपास्त्र आबाद बस्तियों में भी गिरीं, जिनसे जान-माल को नुकसान हुआ। इजरायल ने इस वक्त दावा किया था कि वह इस लौह-कवच की बदौलत ही सुरक्षित है। दरअसल, इजरायल

Scanned with OKEN Scanner

ने अपने प्रमुख नगर तेल अवीव के चारों ओर पांच इस्पाती छत्र स्थापित किए हुए हैं। ये दागी गईं मिसाइल का पता करके उसे वायुमंडल में ही ध्वस्त कर देते हैं। एक छत्र की कीमत 340 करोड़ रु पए है। ये अमेरिका की आर्थिक और तकनीक मदद से 2011 में निर्मित करके सक्रिय कर दिए गए थे। ये लड़ाकू विमान और ड्रोण से छोड़ी जाने वाले प्रक्षेपास्त्रों को भी निशाना बनाने में सक्षम हैं। इसमें तामीर इंटरसेप्ट मिसाइलें लगी हैं, जो गाजा पट्टी से होने वाले हवाई हमले के समय स्वयंमेव सक्रिय होकर प्रतिषोध ले लेती हैं। ये मिसाइलें 80 से 90 प्रतिषत सटीक लक्ष्य साधने में सफल रहती हैं। अब रामायणकालीन ब्रह्म-छत्र की बात करते हैं। राम-रावण युद्ध का तार्किक व वैज्ञानिक चित्रण थाईलैंड (श्यामदेश) की रामायण रामकियेन मलेशिया की हिकायत सेरीराम पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण सुमात्रा की ककविन रामायण और लंका की जानकी हरण में है। इन देशों ने लंका की सामरिक सहायता भी की थी। दरअसल, दक्षिण एशियाई देशों की रामायणों में भगवान राम को महामानव माना, जबकि भारतीयों ने ईश्वर माना। अतएव युद्ध में प्रयोग में लाए गए अस्त्र-शस्त्र, ब्रह्म-छत्र व अन्य सुरक्षा प्रणालियां गौण रह गईं। इनका स्थान अलौकिक चमत्कारों ने ले लिया। डॉ. फादर कामिल बुल्के ने राम-कथा उत्पत्ति और विकास तथा मदन मोहन शर्मा के उपन्यास लंकेश्वर में उपरोक्त रामायणों को आधार बनाकर युद्ध का वर्णन अत्यंत विज्ञान-सम्मत व सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है। अनेक अस्त्र-शस्त्र के निर्माण व उपयोग के वर्णन के साथ ब्रह्म-छत्र का भी उल्लेख है। इस लेखक के उपन्यास दशावतार में भी ब्रह्म-छत्र का उल्लेख है। रावण ने लंका को संकटकाल में सुरक्षित रखने की दृश्टि से ब्रह्म-छत्र का निर्माण कराया था। आवश्यकता पड़ने पर इस छत्र से लंका को ढक दिया जाता था। ऐसा करने से लंका एक सुरक्षा-कवच की छाया में आ जाती थी। इस पर यानों से छोड़े जाने वाले विस्फोटक और प्रक्षेपास्त्र भी बेअसर रहते थे। इसी तरह का छत्र राजस्थान के रावतभाटा परमाणु संयंत्र को आपात स्थिति में मिसाइल हमले से सुरक्षित रखने के लिए भी किया जा रहा है। यह 570 टन वजन का होगा। इस इस्पाती संरचना में 370 टन लोहा, करीब 2020 क्यूबिक मीटर सीमेंट और गिट्टी बिछाई जाएगी। यह भारत का पहला आयरन डोम है। इसे सुरक्षित रखने के लिए बतौर आवरण एक और छत्र निर्मित किया जाएगा। बहरहाल भारत और इजराइल के छत्रों से पता चलता है कि रामायणकालीन ब्रह्म-छत्र का अस्तित्व होना कोई कोरी कल्पना या मिथकीय वर्णन नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

डिजिटल सेवाओं ने आसान बना दी है जिंदगी

अमित राय

भारत में कुछ महीने पहले ही, 5 जी सेवाओं की शुरुआत की गयी थी और अब 6 जी सेवाओं को शुरू करने की दिशा में अपने कदम बढ़ाते हुए, भारत ने स्वयं को अमेरिका, दक्षिण कोरिया और जापान जैसे अग्रणी देशों की पंक्ति में खड़ा कर लिया है। पहले सरकार के लिए दूरसंचार तकनीक एक वैभव प्रदर्शन का माध्यम मात्र थी। लेकिन प्रधानमंत्री मोदी ने इसे सशक्तिकरण का माध्यम बनाया है। आज हमारे डिजिटल सेवाओं के प्रसार ने शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के क्षेत्र में नये अवसरों का सृजन करने के साथ ही, सरकार की जवाबदेही और पारदर्शिता को बढ़ाने का भी कार्य किया है। लोग इंटरनेट से पहले और इंटरनेट के बाद मानव जीवन का विश्लेषण कर रहे हैं। यह हमारे संवाद और सूचनाओं को हासिल करने का एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया। आज से कुछ वर्ष पहले तक, भारत में इंटरनेट को विलासिता का प्रतीक माना जाता था। इसकी पहुंच समाज के कुछ सीमित लोगों तक की थी। लेकिन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के दूरगामी सोच ने समाज के अंतिम पंक्ति में खड़े लोगों को भी इंटरनेट से जोड़ते हुए, एक क्रांतिकारी बदलाव की नींव रखी। आज लोगों को किसी आवेदन की जरूरत हो या प्रशासनिक मदद की, लोग हर प्रकार की ऑनलाइन सुविधाओं का आनंद ले सकते हैं और अपने जीवन को बेहद आसान बना सकते हैं। आज जब प्रधानमंत्री मोदी के मार्गदर्शन में भारत 6-जी की तैयार कर रहा है, तो इससे निश्चित रूप से हमारे शिक्षा जगत, नव उद्यमों में नये अवसरों की भरमार होगी। इन प्रयासों से देश में नवाचार,

Scanned with OKEN Scanner

क्षमता निर्माण और प्रौद्योगिकी की स्वीकार्यता के लिए एक उत्तम वातावरण का निर्माण होगा, जिससे हमारे 'डिजिटल इंडिया' के संकल्पों को भी एक नई उर्जा मिलेगी। उनके शासनकाल में भारत ने जिन उपलब्धियों को हासिल किया है, उसकी चर्चा पूरी दुनिया में हो रही है। आज देश में हर महीने 800 करोड़ से भी अधिक यूपीआई आधारित लेन-देन होते हैं। केन्द्र सरकार द्वारा 43 करोड़ से भी अधिक जन-धन खाते खोलते हुए, देशवासियों के खाते में 28 लाख करोड़ रूपये से भी अधिक राशि सीधे हस्तातंरित किये गये। आज देश में 100 करोड़ से भी अधिक लोगों के पास मोबाइल हैं। वहीं, 2014 से पहले देश में केवल 6 करोड़ लोगों के पास ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी थी, जो आज 85 करोड़ से भी अधिक है। बीते 9 वर्षों के दौरान, देश में 25 लाख किलोमीटर ऑप्टिकल फ इबर बिछाये गए हैं। इसी कालखंड में, 2 लाख ग्राम पंचायतों में भी ऑप्टिकल फ इबर की सेवा प्रदान की गई। आज देश के ग्रामीण इलाकों में 5 लाख से अधिक कॉमन सर्विस सेंटर कार्यरत हैं, जिससे लोगों का जीवन बेहद आसान हो रहा है। यही कारण है कि आज हमारी डिजिटल अर्थव्यवस्था, हमारे

आज देश में 100 करोड़ से भी अधिक लोगों के पास मोबाइल हैं। वहीं, 2014 से पहले देश में केवल 6 करोड़ लोगों के पास ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी थी, जो आज 85 करोड़ से भी अधिक है।

समग्र अर्थव्यवस्था के मुकाबले ढाई गुना अधिक रफ्तार के साथ बढ़ रही है और इसके लिए सरकारी व्यवस्थाओं के साथ, हमें निजी कंपनियों की भी प्रशंसा करनी चाहिए। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत ने बीते 9 वर्षों के दौरान डिजिटल डिवाइड को कम करने में उल्लेखनीय सफलता पायी है और इसे किसी भी हालत में नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है। विशेषज्ञ किसी भी समाज में डिजिटल डिवाइड के लिए आर्थिक और सामाजिक असमानता के कारणों को बारंबार उजागर करते रहे हैं। ऐसे में स्पष्ट है कि भारत ने तकनीक के माध्यम से सामाजार्थिक असमानताओं को भी दूर करने में एक ऐतिहासिक सफ लता हासिल की है, जिसे पूरी दुनिया को अध्ययन करना चाहिए। आज हमारे डिजिटल सेवाओं के प्रसार ने शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के क्षेत्र में नये अवसरों का सृजन करने के साथ ही, सरकार की जवाबदेही और पारदर्शिता को बढ़ाने का भी कार्य किया है। हालांकि, अभी हमें इस दिशा में एक लंबी यात्रा तय करनी है। आने वाले समय में, हमारे सामने अपनी डिजिटल साक्षरता को बढ़ाने की एक बड़ी चुनौती है और हमें पूर्ण विश्वास है कि अपनी अवसंरचनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करते हुए हम इस चुनौती पर

Scanned with OKEN Scanner

त्योहारों के सीजन की दस्तक में प्याज के भाव आसमान छूने लगे

किशन भावनानी

भारत में नवरात्र के 9 दिन धूमधाम से चलने वाले महापर्व में ज्यादातर हिंदू परिवारों में इन दिनों में व्रत रखे जाते हैं और प्याज लहसुन आदि कुछ सब्जियों व वस्तुओं का सेवन नहीं किया जाता जिसके कारण इनके दाम कम हो जाते हैं या स्थिर रहते हैं, क्योंकि इनका इस्तेमाल नहीं होने से खपत बहुत कम हो जाती है और प्याज की कीमतें अनेको दिनों तक कम ही रहती है, परंतु इस बार नवरात्र समाप्त होने के दूसरे दिन ही प्याज की कीमतों में भारी बढ़ोतरी के साथ ग्राफ बढ़ता जा रहा है। जब मैं नवरात्र समाप्ति के दूसरे दिन सब्जी मंडी में गया तो प्याज का भाव सुनकर स्तब्ध रह गया क्योंकि नवरात्र के एक दिन पहले ही मैं 26 रुपए प्रति किलो के रेट से प्याज खरीदे थे, इस महंगाई का कारण मेरी समझ से परे है। सब्जी वाले से बात करने पर उन्होंने बताया कि इस बार प्याज 100 रूपए प्रति किलोग्राम से अधिक तक जाने की संभावना है। हालांकि सरकार ने दिनांक 19 अगस्त 2023 को वित्त मंत्रालय राजस्व विभाग द्वारा अधिसूचना क्रमांक 47/2023 सीमा शुल्क जारी कर प्याज के निर्यात पर 40 प्रतिशत शुल्क लगा दिया है जो तत्काल प्रभाव से 31 दिसंबर 2023 तक जारी रहेगा, क्योंकि एक जानकारी के अनुसार जनवरी, मार्च 2023 में प्याज का निर्यात 8.2 लाख टन रहा जबकि यही पिछली अवधि यानें जनवरी-मार्च 2022 में 3.8 लाख टन था। भारत में टमाटर और प्याज को स्वाद याने टेस्ट की चाबी माना जाता है जो भोजन रूपी दरवाजे और उसके

अभी प्याज एकाएक 60-70 रूपये प्रति किलोग्राम हो गए हैं। अगर हम प्याज की महंगाई के क्रमिक रूप से बढ़ती भारी कीमतों को समझने की बात करें तो, टमाटर के बाद प्याज ने रूलाने की प्लानिंग शुरूकर दी है।

स्वाद को प्याज टमाटर रूपी चाबी से खोला जाता है। यानें यह दोनों नहीं रहे तो मेरा मानना है कि अमीर से गरीब व्यक्तितक को भोजन के स्वाद में कुछ ना कुछ कमीं महसूस करने को मिल जाएगी, इसका अनुभव घर के होम मिनिस्टर यानें महिलाओं को अधिक अनुभव होना लाजमी है, क्योंकि बिना प्याज टमाटर के सब्जी बनाना कितना मुश्किल होता है इनसे अधिक कोई नहीं जान सकता। क्योंकि यदि सब्जी में प्याज किसी को वर्जित है तो उसका अल्टरनेट टमाटर है और टमाटर का अल्टरनेट प्याज है, यदि दोनों ही नहीं हो तो स्वाद की चाबी गुम समझो ! चूंकि अभी प्याज एकाएक 60-70 रूपये प्रति किलोग्राम हो गए हैं। अगर हम प्याज की महंगाई के क्रमिक रूप से बढ़ती भारी कीमतों को समझने की बात करें तो, टमाटर के बाद प्याज ने रूलाने की प्लानिंग शुरू कर दी है। बीते 15 दिनों में लासलगांव एपीएमसी में प्याज की थोक कीमतों में 58 फीसदी का इजाफा हो चुका है। खास बात तो ये है पिछले हफ्ते ही प्याज की कीमत में 18 फीसदी का इजाफा हुआ है। दिसंबर महीने तक प्याज के दाम में तेजी देखने को मिल सकती है। दो दिन पहले तक, लासलगांव मार्केट में में प्याज की औसत कीमत 38 रूपए प्रति किलोग्राम थी, जो दो सप्ताह पहले 24 रूपए प्रति किलोग्राम से 58 प्रतिशत अधिक है। इससे पहले जुलाई और अगस्त के महीने में टमाटर की कीमत आसमान पर पहुंच गई थी। जिसकी वजह से आम लोगों को काफी परेशानी का

Scanned with OKEN Scanner

सामना करना पड़ा था। महंगाई की वजह से सरकार के माथे पर बल पड़ने शुरू हो गए थे। अब प्याज रूलाने की तैयारी कर रहा है। देश की राजधानी दिल्ली में प्याज की खुदरा कीमतें 25-50 फीसदी तक बढ़ गई हैं। फिलहाल प्याज 60-70 रु पये किलो बिक रहा है। बुधवार को दिल्ली के साथ-साथ महाराष्ट्र के कुछ बाजारों में अच्छी क्वालिटी वाले प्याज की उच्चतम कीमत 70 रूपए प्रति किलोग्राम तक पहुंच गई। अहमदनगर में, 10 दिनों में प्याज की औसत कीमतें लगभग 35 रूपए प्रति किलो से बढ़कर 55 रूपए प्रति किलो हो गई हैं। इसी तरह, महाराष्ट्र के अधिकांश प्याज उत्पादक जिलों में प्याज की थोक कीमतें अब 45 से 48 रु पए प्रति किलोग्राम के बीच है। एक रिपोर्ट में कहा गया है कि प्याज की कीमतें दिसंबर तक बढ़ने का अनुमान है, साथ ही नई खरीफ फसल के आने में भी देरी हो रही है, जो लगभग दो महीने की देरी से आने की उम्मीद है. बाजारों में प्याज की घटती आवक प्याज की कीमतों में बढ़ोतरी का मुख्य कारण है। रिपोर्ट में कहा गया है कि पिछले एक पखवाड़े में, भंडारित प्याज की आवक में लगभग 40 प्रतिशत की गिरावट आई है, जो लगभग 400 वाहन प्रति दिन (10 टन प्रत्येक) से घटकर लगभग 250 वाहन हो गई है।

बात अगर हम नई प्याज आने की करें तो, यह स्थिति बनी रहने की उम्मीद है क्योंकि खरीफसीजन से नए लाल प्याज की आवक में लगभग दो महीने की देरी हो रही है। बता दें केंद्र सरकार ने 19 अगस्त को प्याज के निर्यात पर 40 फीसदी शुल्क लगा दिया था, इसके अतिरिक्त सरकार ने बढ़ती कीमतों पर अंकुश लगाने के लिए नेफेड द्वारा खरीदे गए प्याज को मौजूदा बाजार दरों से कम पर थोक बाजारों में बेचना शुरू कर दिया था।

बात अगर हम प्याज पर निर्यात शुल्क

40 प्रतिशत लगाने के कारणों की करें तो, इस साल जनवरी से मार्च 2023 की अवधि में प्याज का निर्यात असाधारण रूप से उच्च स्तरपर लगभग 8.2 लाख टन रहा है, जबकि पिछले साल इस अवधि में यह 3.8 लाख टन था। सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे प्रमुख प्याज उत्पादक राज्यों में मानसून के देरी से आने के कारण खरीफकी बुआई में देरी हुई।यही कारण रहा है कि प्याज समेत अन्य जरू री सब्जियों की औसत खुदरा कीमत एक महीने पहले के 25 रूपये की तुलना में बढ़कर 30 रूपये प्रति किलोग्राम हो गई। इससे पहले, भारतीय राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ (एनसीसीएफ) और भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन महासंघ (नेफेड) ने भी महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश से 1.50 लाख टन प्याज की खरीद की थी। इसके अलावा, प्याज की शेल्फ लाइफ बढ़ाने के लिए सरकार ने पायलट आधार पर भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (बीएआरसी) की मदद से इसका विकिरण शुरू किया। डपभोक्ता मामलों के मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक, 2020-21 से 2023-24 के बीच उच्च खपत वाले क्षेत्रों में रबी सीजन की खरीद के कारण प्याज का वार्षिक बफर एक लाख टन से तीन लाख टन तक होगा। उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय के एक बयान में कहा गया है, प्याज बफर ने उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर प्याज की उपलब्धता सुनिश्चित करने और मूल्य स्थिरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत को प्याज की लगभग 65 प्रतिशत आपूर्ति रबी सीजन से प्राप्त होती है, जिसकी कटाई अप्रैल-जून के दौरान होती है और अक्टूबर-नवंबर में खरीफ फसल की कटाई होने तक उपभोक्ताओं की मांग को पूरा किया जाता है।

बात अगर हम प्याज महंगे होने के इतिहास की करें तो, प्याज के महंगे होने की कहानी कोई पहली बार की नहीं है। अगर 10 साल पीछे के प्याज कारोबार को देखें तो महंगी प्याज ने कई रिकॉर्ड बनाए हैं। देश की सरकारों को हिलाने के साथ ही यह भी पहला ही मौका था जब किसी सामान के महंगा होने की वजह जानने के लिए जांच आयोग बनाया गया था। हालांकि जमाखोरों और दलालों के चलते आयोग को अपना काम बीच में ही बंद करना पड़ा था। लेकिन बंद होने से पहले आयोग ने यह रिपोर्ट दे दी थी कि प्याज महंगी होने के पीछे कोई एक नहीं कई बड़ी वजह हैं. आपको बता दें कि दिल्ली समेत देशभर में रफ्तार पकड़ रही प्याज के भाव को कंट्रोल करने की कवायद का असर शायद दिखने लगा है।

Scanned with OKEN Scanner

Adivasi's of Chattisgarh Especially Gond's Protects Megalithic Tradition

Shefali Pathak

Megaliths in archaeological terminology the art of erecting stone pillars in memory of the dead by the local aborigines - dates back to Stone Age. The Stone Age burial practice, however, has however disappeared in Europe, Latin America and many parts of Asia. But, the "grave art" continues to flourish in tribal pockets of Chhattisgarh's Bastar region. They look like large stone boulders plonked randomly on the red, mineral-rich soil on the outskirts of Chitarpur town in Chhattisgarh's Ramgarh district. To look at, no one would think these are remnants of an Iron Age settlement, and date back to between 1000 BC and 1500 BC. Rough-hewn and uncarved, these large stones called megaliths lack the grandeur of the temples, tombs and palaces built by our ancient kings and emperors, the sophistication of the Indus Valley Civilisation's urban system or the obvious aesthetic appeal of the sculptures or rock art of Ajanta

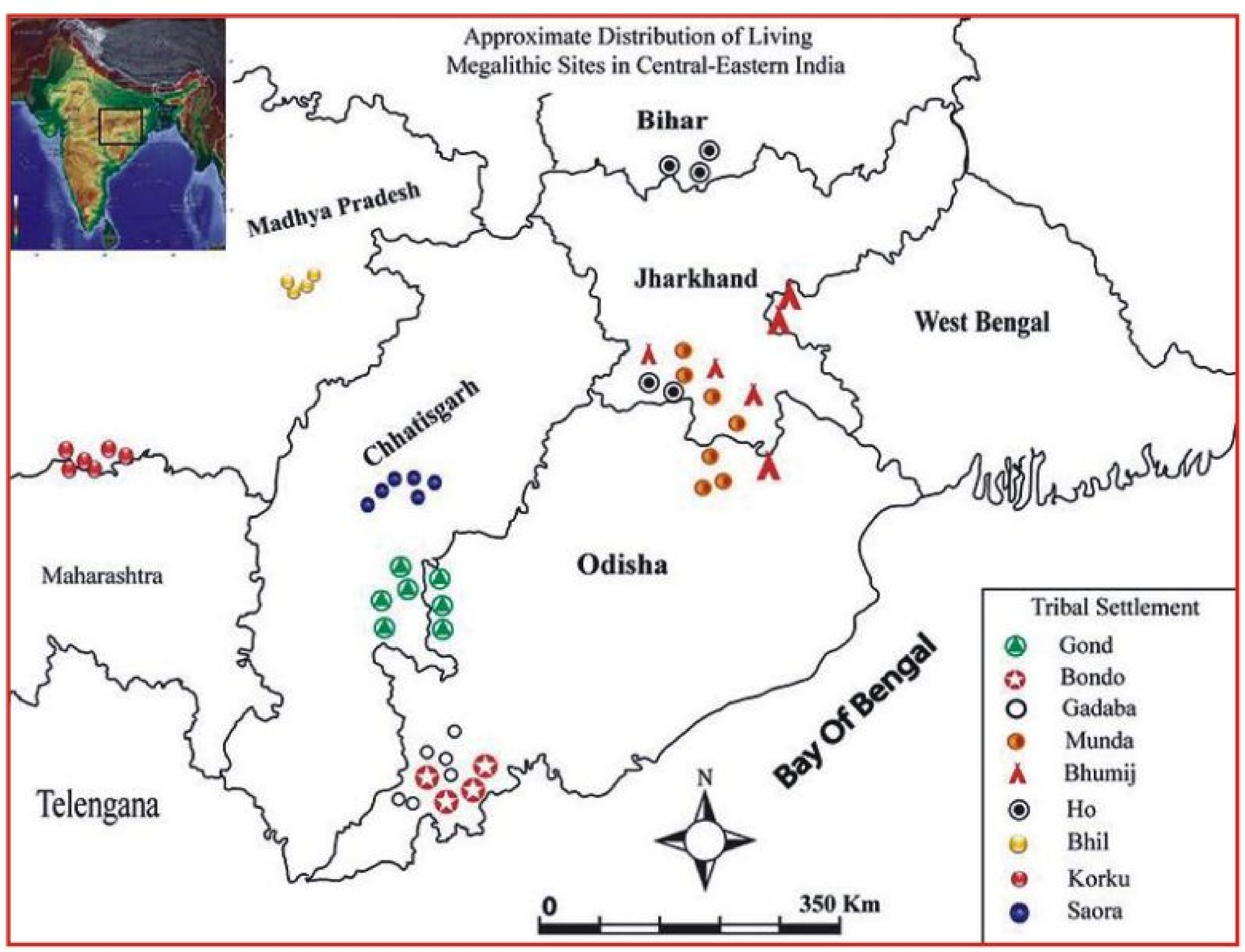

caves. Neither are they as distinctive as the Stonehenge in Britain, arguably the most famous megalithic structures in the world. So you can't really blame the owner of the brick-kiln near these menhirs (standing stones) in Chitarpur who has slowly been encroaching on the field where the stones lie scattered. "We are not very sure how many, but some of these megaliths have already been lost," says Rituraj Bharti, a conservative architect with Indian National Trust for Art and Cultural Heritage (INTACH), which is preparing a plan to document and preserve megalithic sites in Chitarpur and Hazaribagh (in neighbouring Jharkhand). An interpretation centre to spread awareness about these structures among visitors and locals is also planned.

Adivasis converging at the village burial ground, performing cremation or burial rituals for the dead clan member amidst recital of "hanal pata" (burial song in tribal Gondi dialect), beating of drums in a melancholic rhythm, and then raising memorials to "preserve the soul of the dead" is still a common sight in remote tribal areas of Bastar. The architectural designs of the memorial structures found in different places in Bastar are as varied from each other as is possible. As the Stone Age legacy, dating back to the Iron Age in India, passed on to the successive generations, the Bastar tribals have continued. There's consensus, though, on their use. Historians and archaeologists now agree that megaliths were mostly used for burial - either as a memorial, or to preserve the mortal remains of the dead from being desecrated by wild animals. So most megaliths have burial urns, containing the bones of the dead, sometimes belonging to more than one body, and other artefacts such as pottery, iron implements, beads and, sometimes, even gold. "The belief that they have buried gold is one of the principal reasons why megalithis are vandalised,"

Large stones with intricate motifs engraved on them dot the beautiful landscapes of interior Bastar of Chhattisgarh. Called megaliths in archaeological terminology - the art of erecting stone pillars in memory of the dead by the local aborigines — dates back to Stone Age. The Stone Age burial practice, however, has however disappeared in Europe, Latin America and many parts of Asia. But, the "grave art" continues to flourish in tribal pockets of Chhattisgarh's Bastar region. Adivasis converging at the village burial ground, performing cremation or burial rituals for the dead clan member amidst recital of "hanal pata" (burial song in tribal Gondi dialect), beating of drums in a melancholic rhythm, and then raising memorials to "preserve the soul of the dead" is still a common sight in remote tribal areas of Bastar. The architectural designs of the memorial structures found in different places in Bastar are as varied from each other as is possible. As the Stone Age legacy, dating back to the Iron Age in India, passed on to the successive generations, the Bastar tribals have continued the tradition.

The megaliths are broadly classified into four categories Menhir, Cist, Cairn Circle, and Cap Stone. In Bastar, basically menhir type (large standing stones) of megaliths are noticed. There are more than 100 megalithic sites in Bastar region from Antagarh to Narayanpur, from Narayanpur to Kondagaon, from Jagdalpur to Bijapur, from Jagdalpur to Bailadila and from Dantewada to Sukma," said Niranjan Mahawar, eminent ethnologist and president of Chhattisgarh art foundation. Currently three tribe groups - Marias, Dorlas and Murias - practice the megalithic culture. Earlier, Gond tribals of Kanker in Bastar also observed this tradition, but they discontinued it since long.

Bastar is almost insulated from the rest of the world in the ancient and medieval periods for various reasons. This has helped the local tribes preserve their culture and in the process, saved megalithic culture from total extinction. Stone slabs used for building the tombs are engraved with what is the depiction of the culture of the clan to which the

Scanned with OKEN Scanner

dead belonged, along with the deceased's own life and achievements. Figurines of animals, birds, men and women are also found in the engravings. The motifs also illustrate the dead person reaching heaven riding on an elephant. The articles used by the deceased are also buried under the memorial along with an iron ring, in which the local priest "entraps" the departed person's soul by performing some complex rituals. The rituals associated with the burial ceremony are very expensive, as it involves a feast for the clan members and even slaughtering a cow. However, in many cases, tribals, who cannot afford the practice, are forced to postpone it to a later period.

The Gond tribal community believes that their ancestors remain within stone pillars to protect their clan. The size of the menhirs is indicative of the socio-economic status and character of the ancestors, these pillars are worshipped for a maximum of 20–25 years. It is being observed that tribals have started using wooden pillars in place of stone slabs to build memorials at some places. Such megaliths have been discovered in Jagdalpur in Bastar district recently. Huge tree trunks cut in a definite shape are used for the purpose. Stones are scarce in some areas, but wood is found in abundance in the forested Bastar region, thus prompting the shift in tradition while maintaining the sanctity of the idea. However, only affluent families can afford to build the wooden megaliths as of now. In another recent development, it was found that some tribal groups are using slated stones, available in their localities, to erect megaliths.

Every clan has artists, who specialise in the art of engraving, but keeping in line with the times, lately artists have also started using oil paints to draw motifs in megaliths made of slated stones.

But due to atrocities on Adivasi's of Chattisgarh by Government or Naxal's, they are loosing they traditional value. Government are also targeting Adivasi's for preaching their fundamental rights with traditional rituals. They have to understand it's their silent protest and if it is forced then it can shape up into an ugly confrontation.

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान, भोपाल

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान वर्ष 1998 से सतत् रूप से संचालित हो रहा है। इस संस्थान से अध्ययन कर छात्र-छात्राएं प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में अच्छे पदों पर पदस्थ हैं। साथ ही साथ शासकीय पद पर आसीन होकर इस संस्थान को गौरवान्वित कर रहे हैं।

: विषय :

मास्टर ऑफ आर्ट जर्नलिज्म (2 वर्ष)

प्रवेश प्रारंभ

संपर्क सूत्र

विजया पाठक (संचालक) - 9826064596

अर्चना शर्मा - 9754199671

कार्यालय - कार्पोरेट कार्यालय - एफ 116/17, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र.

संस्थान - 28, सुरभि विहार कालोनी, कालीबाड़ी, बी.डी.ए. रोड, भेल, भोपाल, म.प्र.

Scanned with OKEN Scanner